॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रंथमाला

२३

कविराजश्रीराजशेखरप्रणीता

काव्यमीमांसा

'विमला'-'सुधा' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

(आदितः पञ्चमाध्यायपर्यन्ता)

व्याख्याकारः—

कृष्णमणित्रिपाठी

पू० प्राध्यापकोऽध्यक्षश्च

म्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वा रा ण सी

१ ९ ७ ७

58

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रंथमाला
२३

कविराजश्रीराजशेखरप्रणीता

काव्यमीमांसा

'विमला'-'सुधा'संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

(आदितः पञ्चमाध्यायपर्यन्ता)

व्याख्याकारः—
पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठी
भू० पू० प्राध्यापकोऽध्यक्षश्च
वाराणसेय श्रीसम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालयस्य



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वा रा ण सी
१९७७

प्रकाशकः—
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन, पो० बा० नं० १२९
वाराणसी-२२१००१

प्रथम संस्करण १९७७

मूल्य ३-५०

अन्य प्राप्तिस्थान—
चौखम्बा विद्याभवन
चौक, (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
पो० बा० नं० ६९, वाराणसी-२२१००१

मुद्रकः—
चौखम्बा मुद्रणालय
वाराणसी-२२१००१

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA
23

KĀVYAMĪMĀṀSĀ

OF

RĀJAŚEKHARA

Edited With
'Vimala'-'Sudha' Sanskrit-Hindi Commentaries
(Chapters 1–5)

By

Pt. Srikrishnamani Tripathi
Formerly Professor & Head of the Deptt.
Sri Sampurnananda Sanskrit Vishwavidyalaya
Varanasi



THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
VARANASI

(Publishers & Oriental Book-Sellers)
Post Box. No. 129
K. 37/117, Gopal Mandir Lane, Varanasi

First Edition
1977
Price Rs. 3-50

Also can be had of
The Chowkhamba Vidyabhawan
P. Box 69, (Behind Benares State Bank Building.)
Chowk, Varanasi-221001

प्राक्कथन

जब मानव ने सर्वप्रथम आँख खोली तो उसने इस विश्व को सौन्दर्य से परिपूर्ण पाया। मानव-संस्कृति के विकासक्रम के साथ ही काव्यात्मक अनुभूति का भी विकास हुआ। काव्य मानवजीवन की कोमलतम अनुभूतियों का संगीत है। भारतीय कविता का गायन सर्वप्रथम ऋग्वेद के सूक्तों में दिखायी पड़ता है। काव्य का इतिहास भारतीय संस्कृति के अरुणोदय के साथ ही प्रारम्भ होता है। यदि काव्य काञ्चन है, तो काव्यशास्त्र उसकी कसौटी है। भारत के धराधाम पर जहाँ एक ओर काव्य के सृजन की एक अनवच्छिन्न परम्परा है वहीं उनका मूल्यांकन करनेवाले काव्यशास्त्रों एवं उसके तत्त्वदर्शी आचार्यों की परम्परा भी अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है।

काव्यजगत् में भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, आनन्दवर्द्धन, अभिनवगुप्त आदि आचार्यों का नाम आदर के साथ लिया जाता है। काव्यतत्त्व की मीमांसा करनेवाले आचार्यों की शृङ्खला में राजशेखर का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु दुर्भाग्य का विषय है कि प्रायः सभी प्राचीन कवियों एवं विद्वानों की भाँति कविवर राजशेखर का जीवनवृत्त भी अज्ञान के अन्धकार में छिपा है। विद्वानों का अनुमान है कि राजशेखर यायावर गोत्र में उत्पन्न महाराष्ट्रीय क्षत्रिय थे। बालरामायण की प्रस्तावना में उन्होंने अपना परिचय निम्न प्रकार से दिया है—

"तदामुष्यायणस्य महाराष्ट्रचूडामणेरकालजलदस्य चतुर्थो दौर्दुरिकिः शीलवतीसूनुरुपाध्यायः श्रीराजशेखर इत्यपर्याप्तं बहुमानेन।"

इस उद्धरण में राजशेखर ने अपने को महाराष्ट्रचूडामणि अकालजलद का चतुर्थ (प्रपौत्र) शीलवती का सूनु तथा दुर्दरिक का पुत्र बताया है। इस तथ्य का समर्थन विद्धशालभञ्जिका के निम्नाङ्कित वाक्य से भी होता है—

"तथा—तदकालजलदप्रणप्तुस्तस्य गुणगणः किमिति न वर्ण्यते।"

राजशेखर ने अपने पिता के सम्बन्ध में साधारण परिचय देते हुए अपने पितामह के लिए मौन रहकर प्रपितामह का नाम अत्यन्त गौरव के साथ लिया है। इनकी माता का अन्वर्थ नाम शीलवती था।

राजशेखरकृत कर्पूरमञ्जरी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्होंने चौहान-वंशी राजपूत क्षत्रिय की विदुषी कन्या अवन्तिसुन्दरी से अपना विवाह किया था—

चाहुमानकुलमौलिमालिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।
भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोक्तुमेवेच्छति॥

(कर्पूरमञ्जरी १।११)

कुछ विद्वानों को अवन्तिसुन्दरी अवन्तीप्रदेश की प्रतीत होती है, क्योंकि राजशेखर ने बालरामायण में अवन्ती की नारियों को रतिकर्म में अत्यन्त कुशल माना है—

विनाऽवन्तीर्न निपुणा सुदृशो रतिकर्मणि।

यों तो राजशेखर ने लाटदेश की एक ललना कामक्रीडा में निपुण कवयित्री प्रभुदेवी की भी बड़ी प्रशंसा की है और अपने हृदय में उसका निवास बताया है—

सूक्तीनां स्मरकेलीनां कलानां च विलासभूः।
प्रभुदेवी कविर्लाटी ममापि हृदि तिष्ठति॥

पर, प्रभुदेवी उनकी परिणीता पत्नी नहीं थी, भले ही प्रेमिका रही हो। बालरामायण में कवि ने अपने को मन्त्रिसुत के नाम से अभिहित किया है—

सूक्तमिदं तेनैव मन्त्रिसुतेन।

इस सूक्ति से यह अनुमान लगाना कठिन नहीं है कि राजशेखर के पिता किसी राज्य के मंत्री रहे होंगे। राजशेखर ने अपने को उपाध्याय लिखा है। अतः ये जाति के ब्राह्मण प्रतीत होते हैं।

काव्यमीमांसा में अपने मत का प्रतिपादन करते समय राजशेखर ने अपने को अनेकत्र इति 'यायावरीयः' कहा है। 'यायावरीय' शब्द का सामान्य अर्थ घुमक्कड़ होता है, जिसका तात्पर्य भ्रमणशील से है। प्राचीनकाल में ब्राह्मणों के दो भेद थे, यायावरीय और शालीय। यायावरीयों का यह व्रत था कि वे एक स्थान में न रह-कर प्रायः यात्रा करते रहते थे या किसी यायावर महात्मा के वंश में जन्म लेने के कारण राजशेखर ने गौरव वृद्धि के लिए अपने को यायावरीय शब्द से अलंकृत किया है। इसीलिए अनेक विद्वानों ने 'यायावरीय' शब्द से राजशेखर को यायावर वंश में उत्पन्न अर्थ किया है। ऐसे विद्वानों का कथन है कि यह वंश अपनी विद्वत्ता के लिए बहुत ही प्रसिद्ध था। इसमें अकालजलद, सुरानन्द, तरल तथा कविराज आदि अनेक विभूतियों के नाम उल्लेखनीय हैं। स्वयं राजशेखर ने अकालजलद को महाराष्ट्रचूड़ामणि के नाम से अङ्कित किया है। अतः यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि राजशेखर की मातृभूमि महाराष्ट्र प्रदेश में थी।

राजशेखर के महाराष्ट्रीय होने के कारण उनका आन्ध्र, द्रविण, कर्नाटक और लाट देश से अधिक परिचय था। अत एव क्षेमेन्द्रकवि ने अपने औचित्यविचार-चर्चा में राजशेखर के विषय में यह एक मनोरञ्जक पद्य उद्धृत किया है—

कर्णाटीदशनाङ्कितः शितमहाराष्ट्रीकटाक्षक्षतः,
प्रौढान्ध्रीस्तनपीडितः प्रणयिनीभ्रूभङ्गवित्रासितः।
लाटीबाहुविचेष्टितश्च मलयस्त्रीतर्जनीतर्जितः
सोऽयं सम्प्रति राजशेखरकविः वाराणसीं गच्छति॥

राजशेखर का अधिकांश जीवन कान्यकुब्ज (कन्नौज) प्रदेश में व्यतीत हुआ। यही कारण है कि राजशेखर की रचनाओं में कान्यकुब्ज की अत्यधिक प्रशंसा उपलब्ध होती है। बालरामायण में उन्होंने प्रतिहारवंशी राजा महेन्द्र-पाल को अपना शिष्य बताया है—

आपन्नार्तिहरः पराक्रमधनः सौजन्यवारांनिधिः
त्यागी सत्यसुधाप्रवाहशशभृत्कान्तः कवीनां गुरुः।
वर्ण्यं वा गुणरत्नरोहणगिरेः किं तस्य साक्षादसौ
देवो यस्य महेन्द्रपालनृपतिः शिष्यो रघुग्रामणीः॥

(बालरामायण १।१८)

बालरामायण का उपर्युक्त निर्देश इस बात को प्रमाणित करता है कि राज-शेखर का कन्नौज से घनिष्ठतम सम्बन्ध था। महाराष्ट्री होने पर भी उनको कन्नौज तथा अन्तर्वेदी प्रदेश से अधिक प्रेम था।

राजशेखर ने अपनी कृतियों में पाञ्चाल प्रदेश का वर्णन अत्यधिक उत्साह एवं आदर के साथ किया है और पाञ्चालों को अन्तर्वेदी का भूषण बताया है। इस सन्दर्भ में अधोलिखित उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

(क) इदं पुनस्ततोऽपि मन्दाकिनीपरिक्षिप्तं महोदयं नाम नगरं दृश्यते।
इमे अन्तर्वेदीभूषणं पाञ्चालाः।

(ख) इदं द्वयं सर्वमहापवित्रं परस्परालङ्करणैकहेतुः।
पुरं च हे जानकि कान्यकुब्जं सरिच्च गौरीपतिमौलिमाला॥

(बालरामायण १०।८६,९०)

कान्यकुब्ज प्रदेश प्राचीन पाञ्चाल प्रदेश का मध्ययुगीन नाम है। कविवर राजशेखर ने अपनी कृतियों में न केवल पाञ्चाल देश की ही प्रशंसा की है, प्रत्युत पाञ्चालों के श्रुतिमधुर काव्यपाठ को भी भूरि-भूरि प्रशंसा की है—

मार्गानुगेन निनदेन निधिर्गुणानां सम्पूर्णवर्णरचनो यतिभिर्विभक्तः।
पाञ्चालमण्डलभुवां सुभगः कवीनां श्रोत्रे मधु क्षरति किंचन काव्यपाठः॥

(का० मी० अ० ७)

काव्यमीमांसा के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि राजशेखर बहुश्रुत थे तथा इन्होंने सम्पूर्ण देश की भौगोलिक स्थितियों का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त किया था। यही कारण है कि भूवृत्तवर्णन में काव्यमीमांसा एक प्रामाणिक ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। पाञ्चाल देश की तरह ही राजशेखर ने लाट देश का भी वर्णन बढ़े ही उत्साह से किया है[1]।

राजशेखर ने विशिष्टकविप्रशस्तिप्रकरण में शीला, सुभद्रा, भट्टारिका विकट-नितम्बा, प्रभुदेवी आदि कवियित्रियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है और काव्यमीमांसा के कई स्थलों पर अवन्तिसुन्दरी के मतों को सादर उद्धृत किया है। पाक पर अवन्तिसुन्दरी का मत उपस्थित करते हुए लिखा है कि "इयमशक्तिः, न पुनः पाक इत्यवन्तिसुन्दरी"। अतः इससे यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि अवन्तिसुन्दरी एक अत्यन्त विदुषी एवं उस युग की लोकविश्रुत महिला थी।

अवन्तिसुन्दरी ने भी किसी ग्रन्थ की रचना अवश्य की होगी, किन्तु दुर्भाग्य-वश अभी तक उनका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है। ग्रन्थसम्बन्धी लेखन की सूचना हेमचन्द्र ने 'देवी-नाममाला' में दी है। इसमें देवीकोश के लेखन का श्रेय अवन्तिसुन्दरी को ही दिया गया है। विद्वानों का अनुमान है कर्पूरमञ्जरी का अभिनय अवन्तिसुन्दरी की प्रेरणा से ही किया गया था।

राजशेखर ने सम्पूर्ण भारतवर्ष का खूब भ्रमण किया था तथा ये अपने समय के बहुश्रुत विद्वान्, अत्यन्त उदार तथा साहित्यिक इतिहास की परम्परा से पूर्ण परिचित थे। अतः इन्होंने प्रसंगवश अपने पूर्ववर्ती आचार्यों की प्रचुर चर्चा की है तथा विशिष्ट देशों का भी सुन्दर वर्णन किया है। अपने उत्कृष्ट भौगोलिक ज्ञान का परिचय कवि ने बालरामायण तथा काव्यमीमांसा में बड़ी विदग्धता के साथ किया है। जैसे बालरामायण में अयोध्या से लङ्का तक के देशों की स्थिति का परिचय दिया गया है उसी प्रकार काव्यमीमांसा के १७ वें अध्याय में भी सम्पूर्ण भारत के देशकाल का विभागवर्णन प्रस्तुत किया गया है।

---

१. (क) अयमसावितो विश्वम्भराशिरःशेखर इव लाटदेशः।

(ख) यद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां जिह्वासु यन्मोदते
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः।
गद्यं चूर्णपदं रतिपतेस्तत्प्राकृतं यद्वचस
तांल्लाटांल्ललिताङ्गि पश्य नुदति दृष्टे निमेषव्रतम्॥

(बालरामायण अङ्क १०।४८, ४९)

राजशेखर यद्यपि मुख्यतया संस्कृत भाषा के परम विद्वान् तथा साहित्यकार हैं। फिर भी इन्होंने प्राकृतभाषा में भी अपनी रचनाएँ की हैं। बालरामायण की प्रस्तावना में राजशेखर ने अपने को सर्वभाषाविचक्षण कहा है। अपने प्राकृत प्रेम का प्रदर्शन करने के लिए ही राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी का प्रणयन प्राकृतभाषा में किया है तथा बालरामायण में प्राकृत भाषा को प्रकृतमधुरा कहकर, प्राकृत की प्रशंसा की है।[1] कर्पूरमञ्जरी में भी कवि ने प्राकृत तथा संस्कृत के माधुर्य की तुलना नारी तथा पुरुष के साथ की है। यदि संस्कृत भाषा पुरुष की तरह कठोर है, तो प्राकृत भाषा नारी की भाँति कोमल, कमनीय एवं सुकुमार है।

राजशेखर की रचनायें—राजशेखर ने कितने ग्रन्थों की रचनायें की हैं, यह विवादास्पद प्रश्न है। बालरामायण में कवि ने अपने छः प्रबन्धों[2] की सूचना दी है, किन्तु सम्प्रति केवल पाँच ग्रन्थ ही राजशेखर के नाम से उपलब्ध होते हैं। चार नाटक और एक काव्य जैसे—(१) बालरामायण (नाटक) (२) बालभारत-(नाटक) (३) विद्धशालभञ्जिका (नाटिका) (४) कर्पूरमञ्जरी (सट्टक) और (५) काव्यमीमांसा (प्रस्तुत अलङ्कार ग्रन्थ)।

हेमचन्द्र ने अपने काव्यानुशासनविवेक में 'हरविलास' नामक ग्रन्थ को भी राजशेखर की कृति बताया है, परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है। इसके अतिरिक्त सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से अनेक स्फुट कविताएँ भी उपलब्ध होती हैं।

राजशेखर के ग्रन्थों में कौन सा ग्रन्थ पहले रचा गया है तथा कौन बाद में, इस प्रश्न को लेकर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। फिर भी अधिक विद्वान् बालरामायण को कवि की प्रथम कृति मानते हैं तथा काव्यमीमांसा को अन्तिम कृति बतलाते हैं।

इस समय काव्यमीमांसा का केवल एक ही अधिकरण उपलब्ध है

---

१. गिरः श्रव्या दिव्याः प्रकृतमधुराः प्राकृतधुरः
सुभव्योऽपभ्रंशः सरसरचनं भूतवचनम्।
विभिन्नाः पन्थानः किमपि कमनीयाश्च त इमे
निबद्धा यस्त्वेषां खलु लिखितेऽस्मिन् कविवृषा॥
(बालरामायण १।१०

२. विद्धि नः षट् प्रबन्धान् (बा० रा० १।१२)

जिसमें १८ अध्याय हैं। 'तमौपनिषदिके वक्ष्यामः' आदि कहकर राजशेखर ने स्वयं काव्यमीमांसा के शेष अंश की सूचना दी है।

राजशेखर की कृतियों पर दृष्टिपात करने से प्रतीत हो जाता है कि वे एक उच्चकोटि के साहित्यमीमांसक, उत्कृष्ट श्रेणी के नाटककार तथा बहुश्रुत भ्रमणशील महाकवि थे। आलोचकों का अभिमत है कि भाषा, भाव, रचनाविधान और शब्दसौन्दर्य के अतिरिक्त राजशेखर के नाटकों में मनोरञ्जन, लोकोक्ति तथा तत्कालीन सामाजिकजीवन की कतिपय विशेषताओं का भी रूप देखने को मिलता है। राजशेखर के शार्दूलविक्रीडित वृत्त की प्रशंसा तो प्रसिद्ध ही है—

शार्दूलक्रीडितैरेव प्रख्यातो राजशेखरः।
शिखरीव परं वक्रैः सोल्लेखरुच्चशेखरः॥ (सु० ति०)

राजशेखर का महत्त्व—राजशेखर संस्कृत कवियों की परम्परा में एक श्रेष्ठ कुशल एवं बहुज्ञ कवि माने जाते हैं। स्वयं राजशेखर अपने को प्रकारान्तर से वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा भवभूति की परम्परा में अवतरित कवि मानते हैं।

बभूव वाल्मीकिभवः पुराकविः ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥ (बालभारत)

कवि की उपर्युक्त उक्ति केवल दर्पोक्तिमात्र नहीं है, अपितु एक भूतार्थ है। राजशेखर भी भवभूति की तरह ही अनेक शास्त्रों के ज्ञाता सर्वभाषाविचक्षण तथा देश-काल के महान मर्मज्ञ थे।

राजशेखर के यत्र-तत्र अनेक प्रशंसापरक पद्य पाये जाते हैं, जो उनकी विद्वत्ता, महत्ता, काव्यप्रवीणता तथा सौहार्द के द्योतक हैं। तिलकमञ्जरी के रचयिता जैनकवि धनपाल ने यायावरगोत्रीय राजशेखर के विषय में लिखा है—

समाधिगुणशालिन्यः प्रसन्नपरिपक्त्रिमाः।
यायावरकवेर्वाचो मुनीनामिव वृत्तयः॥

कृपाशंकरशर्मा ने राजशेखर की कविता के विषय में लिखा है कि—

श्रोतुं श्रोतृरसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मताः।
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः॥
भोक्तुं स्वादु फलं च जीवनतरोर्यद्यस्ति ते कौतुकम्।
तद्भ्रातः ? श्रृणु राजशेखरकवेः सूक्तीःसुधास्यन्दिनीः॥

लाट देश के कवि सोड्ढल ने अपने उदयसुन्दरीकथा नामक चम्पू काव्य में अंकित किया है कि—

यायावरः प्राज्ञवरो गुणज्ञैराशंसितःसूरिसमाजवर्यैः ।
नृत्यत्युदारं भणिते गुणस्था नटीव यस्योढरसा पदश्रीः ॥

काव्यमीमांसा—राजशेखर के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का स्वच्छ दर्पण है, तथा उनकी प्रतिभा का सुन्दर परिपाक है। नाटककार तथा कविरूप में जहाँ राजशेखर एक कुशल कलाकार के रूप में उपस्थित होते हैं, वहीं साहित्यशास्त्री के रूप में भी उनकी कीर्त्ति अक्षुण्ण है। काव्यमीमांसा सच्चे अर्थों में काव्यतत्त्व के जिज्ञासुओं के लिए निर्दशिका है। प्राचीनकाल की अनवच्छिन्न साहित्यपरम्परा में काव्यमीमांसा एक सुदृढ सोपान है, जिस पर चढ़कर साहित्यधारा में अवगाहन करना सर्वदा सम्भव तथा सरल है।

काव्यमीमांसा राजशेखर की काव्यप्रतिभा एवं वैदुष्य का निदर्शन है। काव्यशास्त्रसम्बन्धी विचारधारा को काव्यपुरुष तथा साहित्यविद्यावधू के काल्पनिक रूपक के द्वारा प्रस्तुत कर राजशेखर ने एक अद्भुत शैली का अवतरण किया है। काव्यमीमांसा में समस्त विद्याओं का आकलन करते हुए पाठक का ध्यान शनैः शनैः साहित्यविद्या पर केन्द्रित किया गया है। प्रथमतः राजशेखर ने काव्यशास्त्र का सृजन करनेवाले पौराणिक आचार्यों की सूची प्रस्तुत करते हुए काव्यशास्त्र के इतिहास की प्रारम्भिक रूपरेखा सुस्थिर करने की चेष्टा की है। दैवयोग से विच्छिन्न काव्यशास्त्र की परम्परा के पुनः स्थिरीकरण की दिशा में राजशेखर का विशेष महत्त्व स्वीकार किया जायेगा। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि इस यशस्वी आचार्य ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का सैद्धान्तिक उल्लेख नामग्रहणपूर्वक किया है। अतः इससे पूर्ववर्ती आचार्यों के कालक्रम को स्थिर करने में अपूर्व सहायता मिलती है।

राजशेखर का समय—

राजशेखर सर्वतोमुखीप्रतिभा के धनी कवि हैं। काव्य, नाटक, दर्शन आदि विषयों पर उनका समान अधिकार है। पर श्रव्य काव्य में इनकी विशेष अभिरुचि है। इनके विशाल साहित्य में भौगोलिक एवं इतिहास का चित्रण बड़ा ही मनोरम है। राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी में अपने को कान्यकुब्जेश्वर महेन्द्रपाल का गुरु बतलाया है और बालभारत में महेन्द्रपाल के पुत्र को अपना रक्षक माना है। महेन्द्रपाल गुर्जर प्रतिहार वंश के राजा थे। ये पंजाब के अतिरिक्त समस्त आर्यावर्त के राजा थे। इनकी राजधानी गाधिपुर थी। रायबरेली जिले के पसनी गाँव में प्राप्त शिलालेख में महेन्द्रपाल की चर्चा है—जिनका शासनकाल

८९० से ९०८ ई० तक माना जाता है। उसके बाद उनके पुत्र महीपाल ने ९१० से ९४० ई० तक शासन किया। इसके अतिरिक्त राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में उद्भट तथा आनन्दवर्द्धन का उल्लेख किया है। इनमें उद्भट काश्मीरराज जयपीड की सभा के प्रमुख विद्वान थे और आनन्दवर्द्धन अवन्तिवर्मा के सभापण्डित थे। दोनों विद्वान् क्रमशः ७८६ ई० से ८१२ ई० तथा ८५७ से ८६४ ई० तक थे। अतः राजशेखर भी इनसे कुछ ही समय बाद के माने जा सकते हैं। इसलिए राजशेखर का समय दशवीं शताब्दी मानना समुचित है। इसी प्रकार तिलकमंजरी तथा व्यक्तिविवेक आदि ग्रन्थों में राजशेखर के नामनिर्देश होने के कारण इनका समय दशवीं शताब्दी माना जा सकता है।

अन्य राजशेखर--

साहित्यिक साक्ष्यों से दो अन्य राजशेखर नाम वाले विद्वानों का भी पता चलता है। एक राजशेखर, जगद्गुरु आद्यशङ्कराचार्य के समकालिक थे। इनका उल्लेख शङ्करदिग्विजय में है—नृपतिः कश्चन राजशेखराख्यः। दूसरे राजशेखर तेरहवीं शताब्दी के एक जैन विद्वान् हुये हैं। जिन्होंने प्रबन्धकोश की रचना की है। इसप्रकार तीन राजशेखर के अस्तित्व की बात साहित्यिक स्रोतों से प्रमाणित होती है, परन्तु यहाँ हमारा सम्बन्ध उपर्युक्त प्रकरण में वर्णित काव्यमीमांसा, बालरामायण आदि के यशस्वी लेखक---राजशेखर कवि से ही है।

काव्यमीमांसा का सारांश

प्रथम अध्याय—इस अध्याय में राजशेखर ने शास्त्र के अवतरण का इतिहास बताया है। श्रीकण्ठ द्वारा परमेष्ठी एवं बैकुण्ठ आदि चौसठ शिष्यों को काव्यशास्त्र का उपदेश दिया गया है। परमेष्ठी ने इसका उपदेश अयोनिज ऋषियों को दिया। लोकहित की दृष्टि से पितामह ने काव्यपुरुष को काव्यविद्या के प्रचारार्थ नियुक्त किया, जिसने १८ अधिकरणवाली काव्यविद्या का विस्तार कर अठारह शिष्यों को दिया और उन्होंने भी पृथक्-पृथक् ग्रन्थों की रचना की। इस सन्दर्भ में राजशेखर का कथन है कि परम्परागत काव्यविद्या का प्रवाह विच्छिन्न हो गया था। अतः मैंने (राजशेखर ने) काव्यसम्बन्धी विषयों का संग्रह करके अट्ठारह अधिकरणयुक्त काव्यमीमांसा में वर्णन किया है।

द्वितीय अध्याय—इस अध्याय में शास्त्रनिर्देशपूर्वक सम्पूर्ण वाङ्मय को काव्य एवं शास्त्र दो प्रकार का बताया गया है। शास्त्राध्ययन के बाद ही काव्य-

विद्या में प्रवेश करना उचित है, क्योंकि काव्य के लिए शास्त्रज्ञान दीपक के समान उपयोगी है। पुनः शास्त्र का वर्गीकरण अपौरुषेय तथा पौरुषेय के रूप में किया गया है। अपौरुषेय शास्त्र में मंत्र और ब्राह्मणग्रन्थों का समावेश है। यदि मंत्रों में क्रियातंत्र का वर्णन है, तो ब्राह्मणों में स्तुतियों के विनियोग का विधान है। इस प्रकार ऋग्, साम, यजुः, त्रयी कहलाती है। अथर्व को चतुर्थ वेद कहा गया है। इसी प्रकार छन्दोबद्ध मंत्र ऋचा है, गायनयुक्त होने पर वे ही मंत्र साम कहलाते हैं। छन्दरहित मंत्र यजुष हैं। तीनों का मिश्रण ही अथर्व है, इतिहास, धनुर्वेद, गांधर्ववेद तथा आयुर्वेद ये चार उपवेद हैं। शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, और ज्योतिष ये छः वेदांग कहलाते हैं, किन्तु राजशेखर के मत में अलंकार शास्त्र भी वेद का सप्तम अंग है।

शिक्षा में वर्णों का स्थान और प्रयत्न, कल्प में मंत्रों का विनियोग, व्याकरण में शब्दों का अन्वाख्यान, निरुक्त में शब्दों का निर्वचन तथा छन्दशास्त्र में छन्द-रचना का विधान किया जाता है। ज्योतिष में ग्रहों का प्रतिफलन तथा गणित का विधान है।

पौरुषेय शास्त्रों में पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा, स्मृति और तंत्र का परिगणन किया जाता है। पुराण अट्ठारह हैं। इतिहास पुराण का ही अंग है। अनेक प्रकार से वेदवाक्यों का विवेचन, मीमांसाशास्त्र का विषय है। स्मृतियों की संख्या १८ है। इसप्रकार चार वेद, छः वेदाङ्ग, और चार शास्त्र ये ही १४ विद्यायें हैं। राजशेखर काव्य को पन्द्रहवीं विद्या मानते हैं। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार वार्ता, कामसूत्र, शिल्पशास्त्र और दण्डनीति इनको मिलाकर अट्ठारह विद्यास्थान हैं। आन्वीक्षिकी त्रयी, वार्ता, और दण्डनीति ये चार विद्यायें हैं। साहित्य पाँचवी विद्या है। ऐसा राजशेखर का मत है। सूत्रों का सारकथन वृत्ति है। इस अध्याय के अन्त में सूत्र, वृत्ति, भाष्य, टीका, पञ्जिका, कारिका और वार्तिक के लक्षणों का वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में काव्यपुरुष की आख्यायिका का वर्णन किया गया है। आचार्य बृहस्पति ने शिष्यों को बताया कि एक बार सरस्वती ने पुत्रप्राप्ति के लिए हिमालय पर तप किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे पुत्र का वरदान दिया। अतः सरस्वती ने काव्यपुरुष को जन्म दिया, जिसने जन्म लेते ही छन्दोमयी वाणी में माता की वन्दना की। इस उक्ति से प्रसन्न होकर सरस्वती ने

अपने पुत्र की प्रशंसा की तथा कहा कि समस्त भाषायें तथा कव्यांग तुम्हारे शरीर के अंग हैं।

सरस्वती एक दिन अपने शिशु काव्यपुरुष को शिलातल पर लिटा कर स्नान करने चली गयी। इसी समय समिधा एवं कुश आदि के लिए घूमते हुये महर्षि उशना उधर आ निकले। नवजात शिशु को धूप में अकेला पड़ा देखकर उसे अपने आश्रम पर उठा ले गये। अतः मुनि के हृदय में भी छन्दोमयी वाणी का प्रसार हो गया, जिससे उशना को कवि कहा जाने लगा। स्नान के बाद लौटने पर अपने पुत्र को वहाँ न पाकर सरस्वती देवी ने रुदन प्रारम्भ कर दिया। संयोगवश उधर से महर्षि वाल्मीकि निकल पड़े और उन्होंने सारस्वतीपुत्र की कुशलता बताकर उशना ऋषि का आश्रम बता दिया। इस उपकार के लिए सरस्वती ने वाल्मीकि को काव्य का वरदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप क्रौंच पक्षी के निधन पर महर्षि वाल्मीकि के मुख से एका-एक 'मानिषाद' श्लोक निकल पड़ा। इसप्रकार वाल्मीकि के उक्त श्लोक का पाठ करने से व्यासजी ने भी लक्षश्लोकात्मक महाभारत की रचना की।

एक बार ब्रह्माजी ने ऋषियों तथा देवताओं के मध्य होनेवाले शास्त्रार्थ में देवी सरस्वती को निर्णय हेतु नियुक्त किया। काव्यपुरुष भी ब्रह्मलोक जाती हुई माता के पीछे-पीछे चल पड़ा, किन्तु ब्रह्माजी के द्वारा अनुमति न होने के कारण सरस्वती उसे छोड़कर चली गयी। अतः काव्यपुरुष रुष्ट होकर भागने लगा। उसके वियोग से उसका मित्र उमा=पार्वतीजी का पुत्र कार्त्तिकेय रोने लगा। इसलिए उसे मनाने हेतु पार्वती जी ने साहित्यविद्यावधू का सृजन किया और उसे आदेश दिया कि 'यह तुम्हारा पति रुष्ट होकर जा रहा है। इसका अनुगमन कर मनाओ'!

काव्यपुरुष सर्वप्रथम पूर्व दिशा की ओर गया। साहित्यविद्यावधू ने भी मुनियों के साथ उसका अनुगमन किया। वाद क्रमशः पाञ्चाल, अवन्ती एवं दक्षिण देश में यात्रा करता हुआ काव्यपुरुष उत्तर के चक्रवर्तिक्षेत्र में गया। वह जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ उसके वेषवूशा की मुनियों ने स्तुति की। तदनुसार ही उनके नाम हुए। अन्त में कामदेव की क्रीडास्थली, विदर्भ देश के वत्सगुल्म नामक नगर में जाकर काव्यपुरुष ने साहित्यविद्यावधू के साथ गान्धर्वरीति से विवाह कर लिया और उसके साथ उमा और सरस्वती के पास हिमालय पर लौट आया तथा स्त्री-सहित उन दोनों को प्रणाम किया। तदनन्तर उन्होंने उस दम्पति को आशीर्वाद देते हुए कविमानस में निवास करने का आदेश दिया। इस प्रकार उन दोनों के लिए कविलोकरूपी नवीन स्वर्ग की सृष्टि हुई।

चतुर्थ अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में दो प्रकार के शिष्यों का वर्णन किया गया है। स्वाभाविक रूप से जिसकी बुद्धि में शास्त्र प्रतिभासित होते हैं, वह बुद्धिमान् तथा अभ्यास से जिसकी बुद्धि संस्कृत हो जाती है, वह आहार्यबुद्धि कहलाता है। इसी प्रसंग में तीन प्रकार की बुद्धियों (स्मृति, मति तथा प्रज्ञा) का विवेचन किया गया है। वर्तमान विषयों का ज्ञान करनेवाली बुद्धि की संज्ञा मति है, भूत का स्मरण करनेवाली बुद्धि की संज्ञा स्मृति है तथा भविष्य के अर्थों का प्रतिबोध करानेवाली बुद्धि प्रज्ञा है। बुद्धिमान् स्वयं ज्ञान प्राप्त करता है जबकि आहार्य-बुद्धि आचार्य द्वारा उत्प्रेरित होकर ज्ञान प्राप्त करता है। अन्यथा ज्ञान प्राप्त करनेवाले की संज्ञा दुर्बुद्धि है।

इसप्रकार राजशेखर ने काव्यकर्म में सहायक अनेक मतों का उल्लेख किया है। श्यामदेव के मत में समाधि तथा आचार्य मंगल के मत में अभ्यास ही काव्य-कर्म में सहायक होता है। समाधि को आन्तरिक प्रयत्न तथा अभ्यास को बाह्य प्रयत्न माना गया है। राजशेखर के मत में शक्ति ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ तत्त्व है।

यहाँपर शक्ति को प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से भिन्न बताया गया है। शक्तियुक्त कवि को ही प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति दोनों प्राप्त होती हैं। प्रतिभाशाली कवि अप्रत्यक्ष को भी प्रत्यक्ष की तरह देखते हैं। मेधावी, रुद्र तथा कुमारदास प्रतिभा-शाली कवियों मे गिने जाते हैं। प्रतिभा दो प्रकार की होती है—कारयित्री और भावयित्री। कारयित्री प्रतिभा को सहजा, आहार्या, और औपदेशिकी इन तीन भागों में विभक्त किया गया है। इनसे युक्त कवि क्रमशः सारस्वत आभ्यासिक, तथा औपदेशिक कहलाते हैं। सारस्वत तथा आभ्यासिक कवियों के मंत्र-तंत्र के अनुष्ठान की अपेक्षा उसी प्रकार नहीं होती है जिस प्रकार स्वभाव से ही मधुर द्राक्षा को पुनः चासनी में भिगो कर मीठा करने की आवश्यकता नहीं होती है। इसके अनन्तर भावयित्री प्रतिभा का विवेचन किया गया है।

आचार्य मंगल का मत है कि आलोचकों के अरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी दो भेद होते हैं। राजशेखर इसमें मत्सरी तथा तत्त्वाभिनिवेशी दो भेद और जोड़कर चार भेद मानते हैं। इन चारों आलोचकों में तत्त्वाभिवेशी आलोचक ही श्रेष्ठ होता है।

पञ्चम अध्याय—इस अध्याय के प्रारम्भ में राजशेखर ने प्रतिभा और व्युत्पत्ति का विवेचन करते हुये अनेक आचार्यों के मतों को उद्धृत किया है। आनन्दवर्धन के अनुसार प्रतिभा श्रेष्ठ है, क्योंकि उससे अव्युत्पत्तिजन्य दोष

छिप जाते हैं, किन्तु आचार्य मंगल के अनुसार व्युत्पत्ति प्रतिभा से श्रेष्ठ है। राजशेखर दोनों प्रतिभा और व्युत्पत्ति में समन्वय ही उचित मानते हैं। वस्तुतः प्रतिभा और व्युत्पत्ति से युक्त कवि ही एक श्रेष्ठ कवि हो सकता है।

आगे कवियों का वर्गीकरण करते हुये कवियों की तीन श्रेणियाँ बतायीं गयीं हैं। (१) शास्त्रकवि (२) काव्यकवि (३) उभयकवि। शास्त्रकवि भी तीन प्रकार के बताये गये हैं। आगे पुनः कवियों की आठ श्रेणियों का निर्देश किया गया है। (१) रचनाकवि (२) शब्दकवि (३) अर्थकवि (४) अलङ्कार-कवि (५) भक्तकवि (६) रसकवि (७) मार्गकवि और (८) शास्त्रार्थकवि। इनके अतिरिक्त नाम, आख्यात, अर्थ, एवं अलङ्कार आदि को आधार बनाकर रचना करनेवाले कवियों का निरूपण किया गया है। गुणों के आधार पर कनिष्ठ मध्यम तथा उत्तमकोटि के कवियों का भी वर्णन यहाँ पर उपस्थित किया गया है। कवियों की विशिष्ट अवस्थाओं को परिलक्षित करते हुये १० भेदों का निम्न-प्रकार से वर्णन किया गया है—(१) काव्यविद्यास्नातक (२) हृदयकवि (३) अन्यापदेशी (४) सेविता (५) घटमान (६) महाकवि (७) कविराज (८) आवेशिक (९) अविच्छेदी (१०) संक्रामयिता।

इस अध्याय के अन्तिम भाग में काव्यपाक की भी चर्चा की गयी है। शब्द, रस, गुण, अलङ्कार के आधार पर काव्यपाक का वर्णन किया गया है। यह पाक नव प्रकार का बताया गया है। (१) पिचुमन्दपाक (२) बदरपाक (३) मृद्वीकापाक (४) वार्त्ताकपाक (५) तिन्तिडीपाक (६) सहकार-पाक (७) क्रमुकपाक (८) त्रपुषपाक और (९) नारिकेलपाक। इन पाकों को भी तीन-तीन के वर्ग में विभाजित किया गया है। अध्याय की समाप्ति इस कथन पर होती है कि कविता न करना ठीक है, परन्तु कुकविता करना ठीक नहीं है। कुकवि बनने का अर्थ है जीवित ही मरण।

कृतज्ञताप्रकाशन संस्कृतभाषा के गौरवसंवर्द्धन के निमित्त निरन्तर प्रयत्न-शील सुरभारती प्रकाशन का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिसने इस संस्करण का प्रकाशन कर संस्कृत जगत् का महान् उपकार किया है। आशा है विज्ञ अध्येतागण प्रकाशक के प्रयास को अवश्य सफल बनाएँगे।

माघी पूर्णिमा
२०३३

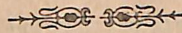
विद्वद्वशंवद
श्रीकृष्णमणित्रिपाठी

॥ श्रीः ॥

राजशेखरकृता

काव्यमीमांसा

संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वययुक्ता



कविरहस्यम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

शास्त्रसङ्ग्रहः १

अथातः काव्यं मीमांसिष्यामहे, यथोपदिदेश श्रीकण्ठः परमेष्ठिवैकुण्ठादिभ्यः

सर्वकार्यार्थसंसिद्ध्यै वन्दितं गणनायकम् ।
संस्मृत्य शारदां देवीं वागधिष्ठातृदेवताम् ॥
त्रिपाठ्युपाह्व-श्रीकृष्णमणिर्नत्वा गुरूनथ ।
कुरुते काव्यमीमांसा-व्याख्यां वै विमलाभिधाम् ॥

समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेदिति शिष्टाचारानुसारं प्रारीप्सितस्य काव्यमीमांसा-ग्रन्थस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं श्रेयःसाधनं मङ्गलमाचरति कविराजो राजशेखरो नाम महाकविः-अथात इति । अत्राथशब्दो मङ्गलार्थः[1], अतश्च हेतुवचनः । तथा च अथशब्दस्य मङ्गलार्थत्व-आरम्भकार्थत्व-आनन्तर्यार्थकत्वनिश्चयात् ग्रन्थारम्भे अथ शब्दोच्चारणमात्रेण मङ्गलं जायते, काव्यमीमांसाया आरम्भः सूच्यते, व्याकरणाणाध्ययनानन्तर्यं चाभिव्यज्यते ।

अथ = बालरामायण-बालभारत-कर्पूरमञ्जरी-विद्धशालभञ्जिकाप्रणयनान-

अब मैं (राजशेखर) काव्यशास्त्र की मीमांसा=विवेचन करूँगा, जैसा कि इस काव्य का ववेचन श्रीकण्ठ=भगवान् शंकर ने परमेष्ठी=ब्रह्मा तथा वैकुण्ठ=विष्णु आदि चौसठ शिष्यों के

---

१. ओङ्कारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्गलिकावुभौ ॥

चतुःषष्टये शिष्येभ्यः । सोऽपि भगवान्स्वयम्भूरिच्छाजन्मभ्यः स्वान्तेवासिभ्यः । तेषु सारस्वतेयो वृन्दीयसामपि वन्द्यः काव्यपुरुष आसीत् । तं च सर्वसमयविदं दिव्येन

न्तरम् । अतः = हेतोः । काव्यम् = लोकोत्तरं कविकर्म[१] । मीमांसिष्यामहे = साङ्गोपाङ्गं विवेचयिष्यामः । 'अथातः काव्यं मीमांसयिष्यामहे' इत्यनेनानुबन्धचतुष्टयं सूच्यते[२]–अत्राधीतव्याकरणन्यायादिरधिकारी, मीमांस्यं काव्यं विषयः, सपरिकरं मीमांस्यकाव्यज्ञानं प्रयोजनम्, प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावश्च सम्बन्धो भवितुमर्हति ।

पूर्वमस्य काव्यशास्त्रस्यागमशुद्ध्यर्थमविच्छिन्नां गुरुपरम्परां निर्दिशन्नाह—यथेति । यथा = यादृशं काव्यम् । उपदिदेश = उपदिष्टवान् । श्रीकण्ठः = श्रीः = हलाहलविषपानजन्या शोभा कण्ठे=ग्रीवायां यस्य स श्रीकण्ठो भगवान् सदाशिवः । परमेष्ठिः = ब्रह्मा, विगता कुण्ठा प्रतिबन्धिका शक्तिः यस्यासौ विकुण्ठो विष्णुः । परमेष्ठिश्च वैकुण्ठश्चेति परमेष्ठि वैकुण्ठौ, परमेष्ठिवैकुण्ठौ आदी येषां ते परमेष्ठिवैकुण्ठादयः तेभ्यः परमेष्ठिवैकुण्ठादिभ्यः = ब्रह्मविष्णुप्रभृतिभ्यः । चतुःषष्टये[३] = चतुःषष्टिसंख्याकेभ्यः शिष्येभ्यः = अन्तेवासिभ्यः उपदिदेशेति पूर्वेण सम्बन्धः ।

सोऽपि = श्रीकण्ठाद् गृहीतानुशासनोऽपि । भगोऽस्यास्तीति भगवान् = षडैश्वर्यसम्पन्नः । स्वयम्भूः = ब्रह्मा । इच्छाजन्मभ्यः = इच्छया जन्म येषां ते इच्छाजन्मानः तेभ्य इच्छाजन्मभ्यः = मनसा निर्मितेभ्यः । स्वान्तेवासिभ्यः = निजमानसपुत्रेभ्यो मरीच्यादिभ्यः, अनुशशासेति शेषः । तेषु = शिष्येषु । सरस्वत्या अयं सारस्वतेयः = सरस्वतीपुत्रः । वृन्दीयसाम् = देवानाम् (वृन्दारकशब्दाद् ईयसुन् प्रत्यये वृन्दारकशब्दस्य वृन्दादेशे च निष्पद्यते वृन्दीयस्शब्दः) वन्द्यः = पूज्यः । काव्यरूपः पुरुषः काव्यप्रवर्तको वा पुरुषः काव्यपुरुषः = लोके प्रथमं काव्य-

---

लिये किया । बाद उन स्वयम्भू ब्रह्माने अपनी इच्छा शक्ति से उत्पन्न मानसपुत्र मरीचि प्रभृति शिष्यों को इस काव्यशास्त्र का उपदेश किया था, उन ब्रह्माजी के शिष्यों में, पूज्य देवताओं के लिए भी वन्दनीय सरस्वती का पुत्र काव्यपुरुष भी सम्मिलित था ।

---

१. प्रज्ञानुप्राणनाज्जीवद् वर्णनानिपुणः कविः ।
तस्य भावोऽथवा कर्म काव्यमित्यभिधीयते ॥

२. सम्बन्धश्चाधिकारी च विषयश्च प्रयोजनम् ।
ग्रन्थादौ तेन वक्तव्यं तस्माच्छास्त्रं प्रशस्यते ॥

३. विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येय-संख्ययोः ।

चक्षुषा भविष्यदर्थदर्शिनं भूर्भुवःस्वस्त्रितयवर्त्तिनीषु प्रजासु हितकाम्यया प्रजापतिः काव्यविद्याप्रवर्त्तनार्थं प्रायुङ्क्त । सोऽष्टादशाधिकरणीं दिव्येभ्यः काव्यविद्यास्नातकेभ्यः सप्रपञ्चं प्रोवाच । तत्र कविरहस्यं सहस्राक्षः समाम्नासीत्, औक्तिकमुक्तिगर्भः, रीतिनिर्णयं सुवर्णनाभः, आनुप्रासिकं प्रचेताः, यमकं यमः, चित्रं चित्राङ्गदः, शब्दश्लेषं शेषः, वास्तवं पुलस्त्यः, औपम्यमौपकायनः, अतिशयं पराशरः, अर्थश्लेष-

---

प्रवर्तकः । सर्वान् समयान् वेत्तीति सर्वसमयविद् तं सर्वसमयविदं = सकलसिद्धान्तज्ञातारम् । दिव्येन चक्षुषा = दिव्यदृष्ट्या । भविष्यतमर्थं पश्यतीति भविष्यदर्थदर्शी तं भविष्यदर्थदर्शिनम्=भावितत्त्वदर्शकम्, भूत-भविष्यवर्तमानपदार्थसाक्षात्कर्तारम् । भूर्भुवःस्वस्त्रितयवर्तिनीषु = भूर्भुस्वराख्यलोकत्रयनिवासिनीषु । हितकाम्यया = कल्याणकामनया, उपकारेच्छया । काव्यस्योपयोगिनी विद्या काव्यविद्या तस्याः प्रवर्तनमेवार्थः प्रयोजनमिति काव्यविद्याप्रवर्तनार्थम् = काव्यविद्यां प्रसारयितुम् । प्रजापतिः = विधाता । प्रायुङ्क्त = नियुक्तवान् । सः=प्रजापतिनियुक्तः काव्यपुरुषः । अष्टादशानामधिकरणनां समाहारः अष्टादशाधिकरणी तामष्टादशाधिकरणीम् = अष्टादशाधिकरणोपेताम् । दिवि भवा दिव्यास्तेभ्यः दिव्येभ्यः = स्वर्गसमुद्भवेभ्यः । काव्यविद्यास्नातकेभ्यः = काव्यविद्यां ग्रहीतुं समुद्यतेभ्यः । सप्रपञ्चं = सविस्तरम् । प्रोवाच = उपदिदेश ।

तेषु अष्टादशसु काव्यपुरुषशिष्येषु मध्ये कस्मै किं प्रोक्तं, केन किमभ्यस्तं, केन च कस्य विषयस्य प्रचारो विहित इति जिज्ञासायामाह—तत्रेति । तत्र = तेषामष्टादशानामधिकरणानां मध्ये । सहस्राक्षः = इन्द्रः । कवीनां रहस्यं मार्मिकं वस्तु यस्मिन्नस्तीति कविरहस्यं=कविरहस्यनामकमधिकरणं, समाम्नासीत्=अभ्यस्तवान् । उक्तिगर्भः = उक्तिगर्भनामकः शिष्यः । औक्तिकम् = उक्तिवैचित्र्यापादकमधिकरणं गृहीतवान् । सुवर्णनाभः रीतिनिर्णयं = रीतिपथप्रदर्शकमधिकरणं प्रचारितवानित्येवं

सर्वसिद्धान्तवेत्ता, भविष्य में भी घटित होनेवाली घटना को अपनी दिव्य दृष्टि से देखने वाले उस काव्यपुरुष को प्रजापति ने, भूः भुवः तथा स्वः इन तीन लोकों में रहनेवाली प्रजा के कल्याणार्थ काव्यविद्या के उपदेश के निमित्त नियुक्त किया । अतः उसने, अठारह अधिकरणों में विभक्त, विस्तारपूर्वक काव्यविद्या का उपदेश दिव्य विद्या-स्नातकों को दिया । उक्त काव्यविद्या के उपदेश से प्रेरित होकर सहस्राक्ष=इन्द्र ने कवि-रहस्य की रचना की । उक्तिगर्भ ने औक्तिक=उक्तिविशेष से सम्बन्धित, सुवर्णनाभ ने रीतिनिर्णय=काव्यरीति का विधान करनेवाले अंश, प्रचेताने अनुप्रास का विवेचन करनेवाले मार्ग की, यम ने यमक की, चित्रांगद ने चित्र काव्य का निरूपण करनेवाले अंश की, शेष ने शब्द में श्लेष का विधान

मुत्तथ्यः, उभयालङ्कारिकं कुबेरः, वैनोदिकं कामदेवः, रूपकनिरूपणीयं भरतः, रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वरः, दोषाधिकरणं धिषणः, गुणौपादानिकमुपमन्युः, औपनिषदिकं कुचुमारः, इति। ततस्ते पृथक् पृथक् स्वशास्त्राणि विरचयाञ्चक्रुः। इत्थङ्कारञ्च प्रकीर्णत्वात् सा किञ्चिदुच्चिच्छिदे। इतीयं प्रयोजकाङ्गवती सङ्क्षिप्य सर्वमर्थमल्पग्रन्थेन अष्टादशप्रकरणी प्रणीता। तस्या अयं प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः।

सर्वत्र योजनीयम्। ततः = तत्तदधिकरणग्रहणानन्तरम्। ते = सहस्राक्षादयः। पृथक् पृथक् = स्वाधीतविद्यामवलम्ब्य। शास्त्राणि = ग्रन्थान्। विरचयाञ्चक्रुः = प्रणीतवन्तः। इत्थङ्कारञ्च = एवं पार्थक्येन शास्त्रप्रणयनात्। प्रकीर्णत्वात् = ग्रन्थानां विच्छिन्नत्वात्। सा = काव्यविद्या। किञ्चित् = अल्पम्। उच्चिच्छिदे = उच्छिन्ना। इति हेतोः स्वकीयग्रन्थप्रणयनप्रयोजनं निर्दिशति–इतीयमिति। इति= हेतोः। इयं = काव्यमीमांसा। प्रयोजकानि काव्यव्युत्पत्तौ कारणानि यानि अङ्गानि तानि सन्ति अस्यामिति प्रयोजकाङ्गवती = काव्यकारणविशिष्टा। संक्षिप्य सर्वमर्थं= सकलं काव्यौपयिकं पदार्थजातं सूक्ष्मतया निर्दिश्य। अल्पग्रन्थेन = स्वल्पसन्दर्भेण। प्रक्रियन्ते प्रकर्षेण व्युत्पाद्यन्ते अर्था येषु तानि प्रकरणानि अष्टादशानां प्रकरणानां समाहारः अष्टादशप्रकरणी = अष्टादशप्रकरणोपेता। प्रणीता=रचिता, मयेति शेषः। तस्याः = अष्टादशप्रकरणेषु निबद्धायाः काव्यमीमांसायाः। अयं = सन्दर्भ्यमाणः। प्रकरणाधिकरणसमुद्देशः = प्रकरणघटिताधिकरणस्य संक्षेपनिर्देशः।

करनेवाले अंश की, पुलस्त्य ने वास्तव=स्वभावोक्ति का निरूपण करनेवाले अंश की, अर्थात् उपमालङ्कार का विवेचन प्रस्तुत करनेवाले अंश की, पराशर ने अतिशयोक्ति का निरूपण करनेवाले अंश की, उतथ्य ने अर्थश्लेष का विधान करनेवाले अंश की, कुबेर ने उभयथा अलङ्कार=शब्दालङ्कार तथा अर्थालङ्कार से सम्बन्धित अंश की, कामदेव ने विनोद-हास्य से परिपूर्ण अंश की, भरत मुनि ने रूपक नाटक शास्त्र की, नन्दिकेश्वर ने रसविषयक ग्रन्थ की, आचार्य-धिषण ने काव्यगत दोषों का विवेचन करनेवाले अंश की, उपमन्यु ने काव्य में गुणों का उपपादन करनेवाले अंश की तथा कुचुमार ने औपनिषदिक काव्यांश आदि की रचनायें की। इस प्रकार उपर्युक्त विभिन्न आचार्यों ने अपने-अपने शास्त्रों का पृथक्-पृथक् विवेचन किया, परन्तु अनेक अधिकरणों में विभक्त एवं अनेकत्र बिखरी होने के कारण काव्यविद्या की परम्परा कुछ विच्छिन्न सी हो गयी थी, उसमें गतिरोध उत्पन्न हो गया। अतः काव्यविद्या की अनवच्छिन्न परम्परा के बोधहेतु मैंने (राजशेखर ने) सम्पूर्ण काव्य अधिकरणों का संक्षेप कर, सभी तत्त्वों का लघुकाय ग्रन्थ के रूप में अष्टादश अधिकरणों से युक्त इस काव्य-मीमांसा की रचना की है। जिसके प्रथम अधिकरण के प्रकरणों का यहाँ नाम निर्देश किया जा रहा है—

१ शास्त्रसंग्रहः, २ शास्त्रनिर्देशः, ३ काव्यपुरुषोत्पत्तिः, ४ शिष्यप्रतिभे, ५ व्युत्पत्ति-कवि-पाकाः, ६ पदवाक्यविवेकः, ७ वाक्यविधयः, ८ काकुप्रकाराः, ९ पाठप्रतिष्ठा, १० काव्यार्थयोनयः, ११ अर्थानुशासनं, १२ कविचर्या, १३ राजचर्या, १४ शब्दार्थ-हरणोपायाः, १५ कविविशेषः, १६ कविसमयः, १७ देशकालविभागः, १८ भुवन-कोशः, इति कविरहस्यं प्रथममधिकरणमित्यादि ।

इति सूत्राण्यथैतेषां व्याख्याभाष्यं भविष्यति ।
समासव्यासविन्यासः सैष शिष्यहिताय नः ॥
चित्रोदाहरणैर्गुर्वी ग्रन्थेन तु लघीयसी ।
इयं नः काव्यमीमांसा काव्यव्युत्पत्तिकारणम् ॥

काव्यमीमांसायाः प्रथमाधिकरणमन्तेऽत्र ग्रन्थे निरूपणीयविषयान् निर्दिशति-शास्त्र-सङ्ग्रह इत्यारभ्य कालदेशविभाग इत्येतत्पर्यन्तम् । अष्टादशो भुवनकोशस्तु अन्यत्र निरूपितः=पृथक् विनिर्मितः । तथा चोक्तं स्वयमेव तेन सप्तदशाध्यायान्ते—

इत्थं देशविभागो मुद्रामात्रेण सूचितः सुधियाम् ।
यस्तु जिगीषत्यधिकं पश्यतु मद्भुवनकोशमसौ ॥

एवञ्च शास्त्रसङ्ग्रहप्रभृतीनि अष्टादशसूत्राणि क्रमशोऽष्टादशप्रकरणानां सन्ति सूचकानि, तेषामेव समुदायभूतं कविरहस्यनामकं प्रथममधिकरणं विद्यते ।

इतः परं ग्रन्थकृत् स्वरचनाविचारसरणिं सूचयन्नाह—इति सूत्राणीत्यादिना श्लोकचतुष्टयेन । इति = एवमुक्तप्रकारेण । सूत्राणि = ग्रन्थप्रकरणानि संक्षिप्तरूपेण

---

१. शास्त्रसंग्रह	२. शास्त्रनिर्देश	३. काव्यपुरुषोत्पत्ति
४. शिष्यप्रतिभा	५. व्युत्पत्तिविपाक	६. पदवाक्यविवेक
७. वाक्यनिधि	८. काकुप्रकार	९. पाठप्रतिष्ठा
१०. काव्यार्थयोनि	११. अर्थानुशासन	१२. कविचर्या
१३. राजचर्या	१४. शब्दार्थ हरणोपाय,	१५. कवि-विशेष
१६. कवि-समय	१७. देश-काल-विभाग	१८. भुवनकोश

यही कविरहस्यनामक प्रथम अधिकरण के १८ प्रकरणों का नाम निर्देश है ।

इस प्रकार सूत्र=संक्षिप्त रूप से काव्यमीमांसा में वर्णन किये गये विषयों का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । अब आगे के अध्यायों में इन्हीं की व्याख्या तथा भाष्य प्रस्तुत किया जायेगा । शिष्यों के हित को दृष्टि में रखते हुए हम समास एवं व्यास शैली के माध्यम= आवश्यकता के अनरूप कहीं पर संक्षेप में और कहीं पर विस्तार में व्याख्या करेंगे ।

ग्रन्थ-कलेवर की दृष्टि से हमारी यह काव्य-मीमांसा लघुकाय है, परन्तु बहुविध विचित्र

इयं सा काव्यमीमांसा मीमांसा यत्र वाग्लवे ।
वाग्लवं न स जानाति न विजानाति यस्त्विमाम् ॥

निर्दिष्टानि । अथ = सूत्ररूपप्रणयनान्तरम्, एतेषां = सूत्राणाम्[1]; व्याख्या[2] भाष्यं[3] च भविष्यति = अस्माभिरेव निर्मास्यते । सैष इत्यत्र सन्धिरार्षः स एषः, नः = अस्माकम्; समासश्च व्यासश्चेति समासव्यासौ समासव्यासाभ्यां निर्देशः समासव्यासनिर्देशः = समस्तव्यस्तविरचनम् । शिष्याणां हितं शिष्यहितं तस्मै शिष्यहिताय = शिष्यबुद्धिवैशद्यरूपेष्टसाधनाय, विहित इति शेषः ।

अथ समासव्यासौ ग्रन्थस्य फलं च प्रदर्शयति—**चित्रेति**—चित्राणि यानि उदाहरणानि चित्रोदाहरणानि तैः चित्रोदाहरणैः=विविधभेदप्रभेदोपपादकदृष्टान्तैः, गुर्वी = महती, ग्रन्थेन—ग्रथ्यते विरच्यते इति ग्रन्थः तेन ग्रन्थेन = शास्त्रेण, तु लघीयसी—अतिशयेन लघु = लघीयसी = अल्पीयसी, इयं मद्बुद्धिस्था, नः = अस्मत्कर्तृका, काव्यस्य मीमांसा काव्यमीमांसा = कविकर्मविवेचनम्, काव्यस्य व्युत्पत्तिः काव्यव्युत्पत्तिः काव्यव्युत्पत्तौ कारणमिति काव्यव्युत्पत्तिकारणम् = काव्यस्य विशिष्टज्ञाने हेतुः, अर्थादधीतयानया काव्यमीमांसया विशिष्टं फलं भविष्यतीति भावः ।

एवंविधं काव्यस्य फलमभिधाय प्रतिज्ञापूर्वकं काव्यमीमांसापदं विवृणोति—**इयं सेति** । इयं = विरच्यमाना, सा काव्यमीमांसा = काव्यमीमांसाख्यो ग्रन्थः

उदाहरणों के कारण यह महत्त्वपूर्ण भी है तथा काव्यविद्या में प्रौढ पाण्डित्य उत्पन्न करने में हमारी यह काव्यमीमांसा सहायक है ।

यह वह काव्यमीमांसा=काव्यविषयक विवेचना है, जहाँ वाग्लव अर्थात् शब्द और अर्थ का विवेचन किया जाता है । जो व्यक्ति इस काव्यमीमांसा को नहीं जानता इस से अनभिज्ञ है, वह शब्द और अर्थ के विवेचनात्मक काव्य से भी अनभिज्ञ है ।

सूत्रलक्षणं यथा—

१. स्वल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद् विश्वतो मुखम् ।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥

व्याख्याशब्दार्थो यथा—

२. मूलस्थानां पदानां स्यादाख्यानं यत्र टीकया ।
प्रमाणैर्युक्तिमिश्रैव सा व्याख्याऽऽख्यायते बुधैः ॥

भाष्यलक्षणं यथा—

३. सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो जनाः ॥

यायावरीयः सङ्क्षिप्य मुनीनां मतविस्तरम् ।
व्याकरोत्काव्यमीमांसां कविभ्यो राजशेखरः ॥
इति कविवरराजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये
प्रथमेऽधिकरणे प्रथमोऽध्यायः शास्त्रसङ्ग्रहः ।

वर्तते, यत्र = यस्याम्, वाचो वाण्याः लवः खण्डः वाग्लवः = एतद् ग्रन्थरूपो मदीयो वाङ्मयस्यैकदेशः, मीमांसा = किं नामास्ति काव्यम्, कीदृशा वर्णनीया विषयाः, के च सन्ति तत्कर्तार इत्यादिविचारः । यस्तु=यः कोऽपि, इमां = मया निर्मास्यमानां काव्यमीमांसाम्, न विजानाति, स वाग्लवं = काव्यम्, न = नहि, जानाति । तस्मादेतदध्ययनद्वारैव काव्यस्य वास्तविकज्ञानसम्भवेन काव्यबुभुत्सुभिरवश्यमियमादर्तव्या काव्यमीमांसेति भावः । अत्र पद्ये वाग्लव इति पदं प्रथमान्तं सप्तम्यन्तं वोभयथोपलभ्यते । तत्र साधीयस्त्वं सुधीभिरेव मीमांस्यम् ।

इति शब्दः अध्यायसमाप्तिसूचकः । तथाहि वैजयन्तीकोशः—

प्रमेयविरतिस्थानमध्यायश्च प्रपाठकः ।

ग्रन्थप्रणेता राजशेखरो नाम महाकविः निजनिर्मितकाव्यमीमांसानुवृत्तये स्वकीयं कुलं नाम च निर्दिशन् कपोलकल्पनानिरासार्थं स्वस्याः कृतेः काव्यमीमांसायाः पूर्वाचार्यमतसम्मतं प्रदर्शयन्नाह—यायावरीय इति । यायावरीयः = यायावरकुलोत्पन्नः, राजशेखरः = राजशेखरनामा कविः । मुनीनां = भरतादीनां पूर्वाचार्याणाम्, मतस्य विस्तरं मतविस्तरं = शास्त्रविस्तारम् । संक्षिप्य = समासीकृत्य, काव्यमीमांसां=काव्यमीमांसानामकं ग्रन्थं काव्यविषयकविचारं वा, कविभ्यः= काव्यनिर्मातॄणां कवीनां कृते, व्याकरोति = व्याख्यायते । तस्मात् कवय एवात्राधिकृता बोद्धव्या इति तात्पर्यं पर्यवसितम् ।

इति श्रीमुखशाण्डिल्यगोत्रजन्मना डॉ० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना
कृतायां काव्यमीमांसाया विमलाख्यायां व्याख्यायां
शास्त्रसंग्रहो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

—:०:—

यायावर गोत्र में उत्पन्न होनेवाले कवि राजशेखर ने कवियों के लिए काव्यशास्त्र में निष्णात मुनियों के विस्तृत मतों का संक्षेप कर इस काव्यमीमांसा की रचना की है ।

इस प्रकार कविराजशेखरकृत काव्यमीमांसा के प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय पर पं० श्रीकृष्णमणि द्वारा की गयी सुधा व्याख्या समाप्त ।



अथ द्वितीयोऽध्यायः

शास्त्रनिर्देशः २

इह हि वाङ्मयमुभयथा शास्त्रं काव्यं च। शास्त्रपूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेष्वभिनिविशेत। नह्यप्रवर्तितप्रदीपास्तमसि तत्त्वार्थसार्थमध्यक्षयन्ति। तच्च

अथ पूर्वनिर्दिष्टक्रमानुसारं सूत्रविवरणोपस्थापनकामनया अवसरप्राप्तं द्वितीयं सूत्रं व्याख्यातुमपक्रमते–शास्त्रनिर्देश इति। शास्त्राणां निर्देशः शास्त्रनिर्देशः। अर्थादस्मिन्नध्याये शास्त्राणां निर्देशः क्रियते, यतो हि तत्तत्प्रसङ्गे काव्येषु पृथक् पृथक् शास्त्रीयविषयाणां वर्णितत्वेन तज्ज्ञानमन्तरा काव्यपद्यानां यथार्थं ज्ञानं सुलभं नास्ति। अतस्तदर्थं तेषां तेषामुपयोगिनां शास्त्राणां नामतो निर्देशोऽस्माभिः क्रियते इति भावः।

वाङ्मयभेदं दर्शयति–इहेति—इह=लोके। वाङ्मयं=वाक्प्रपञ्चं, वाणीस्वरूपम्, उभयथा=द्विविधम्, अनधीतशास्त्रान्तराणां वास्तविकी काव्यव्युत्पत्तिर्न जायतेऽत आह—शास्त्रेति—[1]शास्त्रं पूर्वं प्रथमं येषां तानि शास्त्रपूर्वकाणि तेषां भावः शास्त्रपूर्वकत्वं तस्मात् शास्त्रपूर्वकत्वात्=शास्त्रज्ञानप्राथम्यात्। शास्त्रेषु=न्यायादिशास्त्रेषु। अभिनिविशेत=अध्यवस्येत्। काव्ये नैपुण्यप्राप्तये पूर्वं शास्त्रान्तराणामभ्यासो नूनं विधेय इत्यर्थः। उक्तार्थे दृष्टान्तमाह—नहीत्यादि। न प्रवर्तितः अप्रवर्तितः अप्रवर्तितः प्रदीपो यैः ते अप्रवर्तितप्रदीपाः=अप्रज्वालितप्रकाशनसाधनाः। तमसि=अन्धकारे। तत्त्वं च अर्थश्चेति तत्त्वार्थौ तयोः सार्थं तत्त्वार्थं सार्थं तत् तत्त्वार्थसार्थं=वस्तुतादात्म्यसमूहम्। न अध्यक्षयन्ति=नहि प्रत्यक्ष-

---

शास्त्र तथा काव्य के भेद से वाङ्मय दो प्रकार का होता है। काव्यनिर्माण के लिए शास्त्र का अध्ययन परम आवश्यक है। अतः कवि कर्म के इच्छुक व्यक्ति को पहले शास्त्रों में प्रवेश करना चाहिए। तदुपरान्त काव्य का निर्माण। जिस प्रकार दीपक के प्रकाश के अभाव में, अन्धकार युक्त वातावरण में पदार्थों की प्रतीति सम्भव नहीं होती, ठीक उसी प्रकार शास्त्रों में प्रवीणता के विना काव्य सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति असम्भव है। शास्त्र के भी दो भेद हैं—

---

१. प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोदीर्यतेऽत्र तच्छास्त्रमभिधीयते॥

द्विधा अपौरुषेयं पौरुषेयं च। अपौरुषेयं श्रुतिः। सा च मन्त्रब्राह्मणे। विवृतक्रियातन्त्रा मन्त्राः। मन्त्राणां स्तुतिनिन्दाव्याख्यानविनियोगादिग्रन्थो ब्राह्मणम्। ऋग्यजुःसामवेदास्त्रयी। अथर्वं तुरीयम्। तत्रार्थव्यवस्थितपादा ऋचः। ताः संगीतयः

यन्ति। यथाऽगृहीतप्रकाशसाधनः पुमान् अन्धकारे वर्तमानं वस्तु अवलोकयितुं न शक्नोति तथैवानधीतशास्त्रान्तरा अपि विपश्चितो न भवितुमर्हन्ति काव्यनिर्माणप्रवीणाः। अतोऽन्धकारे पदार्थज्ञानाय प्रदीपस्येव काव्यार्थज्ञानाय शास्त्रान्तरस्य नितान्तमावश्यकतेति तात्पर्यम्। शास्त्रं विभजते—तच्चेति। तच्च = शास्त्रं च, पुरुषेण प्रणीतं पौरुषेयं न पौरुषेयम् अपौरुषेयम् = कर्तृत्वेन पुरुषसम्बन्धरहितं तथात्वादेव वेदस्यादुष्टत्वमनभिशङ्कनीयत्वं चाभिहितम्[1]। श्रुतिः = वेदः। सा च = श्रुतिरपि। मन्त्रश्च ब्राह्मणश्चेति मन्त्रब्राह्मणे=मन्त्रभागब्राह्मणभागौ। अत एवापस्तम्बः 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'। तत्र मन्त्रमाह—विवृतेति। विवृता क्रिया यैस्ते विवृतक्रियाः=विस्तृतयागादि वेदशाखाभिनिवेशाः। ब्राह्मणस्वरूपमाह—मन्त्रेति। मन्त्राणां स्तुतेः निन्दाया व्याख्यानस्य विनियोगादिविधेश्च बोधको ग्रन्थः—मन्त्रभागस्य भाष्यात्मको ग्रन्थो ब्राह्मणमुच्यते इति भावः। ऋक् च यजुश्च साम चेति ऋग्यजुःसामानि तान्येव वेदा इति ऋग्यजुःसामवेदाः। त्रयी = गद्यपद्यगीत्यात्मकरचनाशाली वेदः त्रयीशब्देन व्यवह्रीयते। तुरीयः = चतुर्थः। तत्र गद्यात्मको यजुर्वेदः, पद्यात्मक ऋगथर्वणी, गीतिरूपः सामवेदः। ऋगादीनां स्वरूपं निर्दिशति—तत्रेति। तत्र = त्रय्या मध्ये, अर्थेन व्यवस्थिताः पादा यासु ता अर्थव्यवस्थितपादाः = अर्थवशेन शास्त्रनिरूपितविधानमापन्ना अनुष्टुबादयः, ऋच्यन्ते प्रस्तूयन्ते देवा आभिरिति ऋचः[2]। ताः = ऋचः, सगीतयः = गीतिभिः सहिताः

अपौरुषेय शास्त्र तथा पौरुषेय शास्त्र। अपौरुषेय शास्त्रों में वेदों की गणना की जाती है। वेदमन्त्र तथा ब्राह्मणात्मक हैं। वेद मन्त्रों में कर्मकाण्ड से सम्बन्धित यज्ञ-यागादिक क्रियाओं के विनियोग का निर्देश किया गया है। किन्तु मन्त्रों की स्तुति, निन्दा, व्याख्यान तथा विनियोग आदि का विधान ब्राह्मण ग्रन्थों में किया गया है। ऋक्, यजुः तथा सामवेद को त्रयी कहते हैं। अथर्ववेद चौथा वेद कहलाता है। अर्थ का क्रमबद्ध उपस्थापन करने के कारण वेदमन्त्रों को ऋचा कहा जाता है। किन्तु संगीत की ताललय मे युक्त होने पर

---

१. दोषाः सन्ति न सन्तीति पौरुषेयस्य युज्यते।
वेदे कर्तुरभावात्तु दोषशङ्कैव नास्ति नः॥
२. यः कश्चित् पादवान् मन्त्रो युक्तश्चाक्षरसंज्ञया।
स्वरयुक्तोऽवसाने च ता ऋचः परिजानते॥

सामानि। अच्छन्दांस्यगीतानि यजूंषि। ऋचो यजूंषि सामानि चाथर्वाणि त इमे चत्वारो वेदाः। इतिहासवेदधनुर्वेदौ गान्धर्वायुर्वेदावपि चोपवेदाः। 'वेदोपवेदात्मा सार्ववर्णिकः पञ्चमो नाट्यवेदः' इति द्रौहिणिः। 'शिक्षा, कल्पः, व्याकरणं, निरुक्तं,

---

सगीतयः, स्यन्ति पापं ब्रह्माननिर्गतत्वात् इति सामानि।

गद्यमयत्वात् नास्ति छन्दो येषु तानि अच्छन्दांसि=छन्दोरहितानि, अगीतानि= गद्यमयत्वाद् अगेयानि। इज्यते एभिरिति यजूंषि। परिगणय्य दर्शयति--**ऋच इति।** वेदप्रदर्शनानन्तरमुपवेदान् दर्शयति--**इतिहासेति।** [1]इतिहासश्चासौ वेदः इतिहासवेदः, धनुषो वेदः धनुर्वेदः, इतिहासवेदश्च धनुर्वेदश्चेति इतिहासधनुर्वेदौ, गन्धर्वस्यायं गान्धर्वः, आयुषो वेद आयुर्वेदः गान्धर्वश्चायुर्वेदश्चेति गान्धर्वायुर्वेदौ च उपवेदाः = वेदवन्मान्यत्वात्तत्तुल्याः, सेतिहासवेदः ऋग्वेदस्य, धनुर्वेदः यजुर्वेदस्य, गन्धर्ववेदः सामवेदस्य, आयुर्वेदश्च अथर्ववेदस्योपवेदाः सन्ति। इत्थं वेदानुपवेदांश्च प्रदर्श्य नाट्यस्यापि वेदत्वं व्यवस्थापयति--**वेदोपवेदात्मेति**--वेदाश्चोपवेदाश्चेति वेदोपवेदा ते आत्मानो यस्यासौ वेदोपवेदात्मा, सर्वैः वर्णैः पठितुं योग्यः सार्ववर्णिकः, पञ्चमः = पञ्चमसंख्याकः, नाट्यवेदः = नाट्यसंज्ञको वेदः। द्रुहिणस्य ब्रह्मणोऽयं द्रौहिणिः = तदनुयायी भरतमुनिः।

वेदेषु द्विजातीनामेवाधिकारेण शूद्रादीनामनधिकृतत्वात् इन्द्रादिदेवैरभ्यर्थितेन विधात्रा वेदोपवेदेभ्यः सारमाकृष्य शूद्रैरप्यध्येतुं शक्यः चतुर्वेदातिरिक्तः पञ्चमो नाट्यवेदः ससृजे। तदुक्तं भरतमुनिना नाट्यशास्त्रे[2]।

वे ही मन्त्र 'साम' के नाम से अभिहित किये जाते हैं। छन्द के बन्धन से मुक्त तथा संगीतात्मकता से रहित मन्त्रों की संज्ञा यजुस् है। इस प्रकार ऋक्, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद—ये चार वेद हैं। इतिहास वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद तथा आयुर्वेद ये चार उपवेद के नाम से प्रसिद्ध हैं। समस्त वेदों तथा उपवेदों की आत्मा नाट्यवेद पाचवाँ वेद है। इस पञ्चमवेद की विशेषता यह है कि इसमें सभी वर्णों का समान अधिकार है ऐसा आचार्य

---

१. धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥

२. महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः।
क्रीडनीयकमिच्छामि दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्॥
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पञ्चमं सार्ववर्णिकम्॥

छन्दोविचितिः, ज्यौतिषं च षडङ्गानि' इत्याचार्याः । 'उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गम्' इति यायावरीयः । ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानाद्वेदार्थानवगतिः । यथा—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

वेदोपवेदान् वर्णयित्वा वेदाङ्गानि परिगणयति—शिक्षेति । लक्षणमेषां स्वयमेव वक्ष्यति ग्रन्थकृत् । षट् = षड्संख्याकानि अङ्ग्यते उपक्रियते उपपाद्यते वेदार्थ एभिरिति अङ्गानि = वेदार्थोपकरणानि । इति = इत्थम् । आचार्याः = धर्मार्थकाममोक्षवादिनो विपश्चितो वदन्तीति शेषः । स्वमतमाह––उपेति । उपकारकत्वात् = वेदार्थोपपादकत्वाद् अलङ्कारः = अलङ्कारशास्त्रमपि वेदस्य सप्तमं = सप्तसंख्याकमङ्गम् । कथमलङ्कारस्याङ्गत्वमित्यत आह––ऋते चेति । तस्य स्वरूपं तत्स्वरूपं तत्स्वरूपस्य परिज्ञानं तत्स्वरूपपरिज्ञानं तस्मात् तत्स्वरूपपरिज्ञानात् = काव्यस्वरूपावबोधात् । ऋते = विना । वेदार्थस्यानवगतिः वेदार्थानवगतिः = वेदार्थापरिज्ञानम् । अलङ्कारज्ञानं विना वेदानां यथार्थतोऽर्थावगतिरसम्भवेति भावः । अलङ्कारज्ञानमन्तरा वेदार्थानवगतिरूपामापत्तिमुदाहरणद्वारा दर्शयति––द्वेति । अस्य पद्यस्य प्रथमचरणे चतुर्ष्वपि पदेषु 'सुपां सुलुगिति पाणिनीयसूत्रेण औ विभक्तेः स्थाने आ–इत्यादेशश्छान्दसः । द्वा=द्वौ, द्वित्वसंख्याविशिष्टौ, पक्षिणौ–जीवेश्वररूपौ । सुपर्णा = शोभनपक्षशालिनौ, देहात् पृथग्भूतौ । सुयुजा = नित्यमिलितौ, सहचरौ चिद्रूपत्वात् सदृशौ । सदृशा = समानशीलव्यसनौ । उपकार्योपकारितया स्थितत्वात् समानं = एकम्, वृश्च्यते इति वृक्षः तं वृक्षं = तरुं, शरीरं च । परिषस्वजाते = आलिङ्गतः, आश्रित्य स्थितौ । तयोः = पक्षिणोः मध्ये । अन्यः=अन्यतरः, जीवरूपः । स्वादु = मधुरम्, आपातरमणीयम् । पिप्पलं = पिप्पलस्य फलं पिप्पलं= (फले लुगिति सूत्रेण प्रत्ययलोपः) कर्मफलं सुखदुःखादिकम् । अत्ति = भक्षयति, अनुभवति । अन्यः = पूर्वोक्तादपरः ईश्वररूपः, अनश्नन् = अभक्षयन्, अस्वादन्,

---

द्रौहिणि का मत है । शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष—ये छः वेदाङ्ग—अनेक आचार्यों के मत में प्रसिद्ध हैं । परन्तु कल्याणकर होने के कारण अलङ्कार शास्त्र सप्तम अंग है—यह यायावर गोत्र में उत्पन्न राजशेखर का मत है । क्योंकि अलंकार शास्त्र के परिज्ञान के बिना वेदार्थ का बोध सम्भव नहीं है । जैसे—

सुन्दर पंखों से युक्त एक ही साथ मित्रभाव से रहनेवाले दो पक्षी एक ही वृक्ष की डाल पर निवास करते हैं । उन दोनों में एक पक्षी स्वादयुक्त फल का उपभोग करता है, किन्तु दूसरा पक्षी केवल द्रष्टामात्र है ।

सेयं शास्त्रोक्तिः । प्रत्यधिकरणं च ऋचं यजुः सामाथर्वणं ब्राह्मणं चोदाहृत्य भाषामुदाहरिष्यामः । तत्र वर्णानां स्थानकरणप्रयत्नादिभिः निष्पत्तिनिर्णयिनी शिक्षा आपिशलीयादिका । नानाशाखाधीतानां मन्त्राणां विनियोजकं सूत्रं कल्पः ।

कर्मफलविषयभोगरहितः सन् । अभिचाकशीति = प्रकाशते, नित्यानन्दत्वात् । सर्वतोऽनवधानतया पश्यतीत्यर्थः । अत्र जीवेश्वरयोः पक्षितादात्म्येनाध्यवसाना-त्तयोरतिशयः प्रतीयते । अप्रस्तुताभ्यां पक्षिभ्यां प्रस्तुतयोः जीवेश्वरयोः पृथगनिर्दे-शात् भेदेऽभेदाध्यवसायात्मिकातिशयोक्त्यलङ्कारद्वारा रोचकता प्रदर्शिता । सेयं शास्त्रोक्तिरलङ्कारीयज्ञानमन्तरा न सम्यगवगन्तुं शक्यते । अतस्तज्ज्ञानमत्यावश्य-कम् । अस्यैतदेव तात्पर्यम्--अत्रैकस्मिन् कलेवरे नियम्यनियामकरूपेण वर्तमानयोः जीवेश्वरयोः वैलक्षण्यमतिशयोक्त्या बोध्यते । तच्चातिशयोक्तिज्ञानमलङ्कार-शास्त्राधीनम् । तस्मात् सम्यगुक्तमुपकारत्वादलङ्कारो वेदस्य सप्तममङ्गमिति ।

इतः परं पूर्वनिर्दिष्टानां षण्णामङ्गानां लक्षणं निर्वक्ति--तत्रेति । तत्र = षडङ्गेषु । वर्णानां = कचटतपादीनां । स्थानं = ताल्वादि, करणं = बाह्यप्रयत्नः, आभ्यन्तरप्रयत्नश्च । ते स्थानकरणप्रयत्नाः आदयो येषां ते स्थानकरणप्रयत्नादयः तैः स्थानकरणप्रयत्नादिभिः । निष्पत्तेः निर्णयिनी निष्पत्तिनिर्णयिनी = सिद्धि-निश्चायिका । शिक्षा च आपिशलीयादिका । अत्रादिपदेन पाणिनीयशिक्षायाज्ञ-वल्क्यशिक्षादीनां ग्रहणं ज्ञेयम् । कल्पं निर्दिशति—नानेति । सूत्रं = मन्त्रविनियोग-बोधकं कात्यायनसूत्रं, बौधायनसूत्रं, आश्वलायनसूत्रं, आपस्तम्बसूत्रं च, कल्पः= यागक्रियानिर्वाहकं शास्त्रम् । अयं भावः विभिन्नासु वेदशाखासु पठितानां मन्त्राणां मध्ये कस्य मन्त्रस्य कुत्र विनियोगः कार्य इति कल्पसूत्रे निरूपितं वर्तते ।

श्वेताश्वतर उपनिषत्प्रोक्त इस प्रस्तुत मन्त्रमें रूपकालङ्कार के माध्यम से जीवात्मा तथा परमात्मा का बोध कराने का प्रयत्न किया गया है । अतः राजशेखर अलङ्कार को सातवाँ वेद मानते हैं ।

उपर्युक्त मन्त्र शास्त्र का वचन है । अतः आगे प्रत्येक अधिकरण में ऋक्, यजुस्, साम, अथर्व तथा ब्राह्मणग्रन्थों से उदाहरण प्रस्तुत करते हुये, हम (राजशेखर) भाषा अर्थात् संस्कृत का विवेचन करेंगे । स्थान, करण, तथा प्रयत्न आदि के द्वारा वर्णों की निष्पत्ति जिस शास्त्र द्वारा बतायी जाती है, उसे शिक्षा के नाम से अभिहित किया जाता है । इस सन्दर्भ में आपिशलि आदि के शिक्षाग्रन्थ प्रसिद्ध हैं । वैदिक संहितायें अनेक शाखाओं में विभक्त हैं । अतः उन-उन शाखाओं में संकलित मन्त्रों का विनियोग बताने वाले शास्त्र को

सा च यजुर्विद्या। शब्दानामन्वाख्यानं व्याकरणम्। निर्वचनं निरुक्तम्। छन्दसां प्रतिपादयित्री छन्दोविचितिः। ग्रहगणितं ज्यौतिषम्। अलङ्कारव्याख्यानं तु पुरस्तात्। पौरुषेयं तु पुराणम्। आन्वीक्षिकी, मीमांसा, स्मृतितन्त्रमिति चत्वारि

सा=पूर्वोक्ता कल्परूपा यजुर्विद्या। इज्यते इति यजुः=यजनं तस्य विद्या=शास्त्रम्। व्याकरणमाह--शब्देति। शब्दानां सुबन्ततिङन्तचयपदानाम्। अन्वाख्यानम्=साधकम्। व्याक्रियन्ते=व्युत्पाद्यन्ते साधवः शब्दा यस्मिन् येन वा तद् [1]व्याकरणं =शब्दव्युत्पत्याधायकं शास्त्रम्। निरुक्तमाह—निर्वचनमिति। निर्वचनं शब्दानां निश्चयेन कथनम्। अर्थात् वैदिकलौकिकोभयविधशब्दानां [2]वर्णागमादिभिर्निश्चयेन कथनं निरुक्तमुच्यते। ननु व्याकरणान्निरुक्ते भेदो न प्रतीयते, उभयत्र शब्दागमादीनां दृश्यमानत्वादिति चेदत्रोच्यते—शब्दमात्रनिर्वचनं व्याकरणं तात्पर्येण सह शब्दानां निर्वचनं निरुक्तमित्युभयत्र स्पष्टं भेदस्योपलम्भात्। नहि निरुक्तमन्तरा अन्यदङ्गमन्यद्वा शास्त्रमिति विवेक्तुं शक्यम्। छन्दो विचितिमाह--छन्दसामिति। चन्दयन्ति=आह्लादयन्ति इति छन्दांसि (चदि आह्लादने इति धातोः 'चन्देरादेश्च छः' इत्यनेन असुन् प्रत्यये चकारस्य छकारे च कृते निष्पद्यते छन्दः शब्दः) तेषां छन्दसां=ह्रस्वदीर्घयतिनियमबोधकवाक्यानाम्। प्रसादयित्री=बोधिका। छन्दोविचितिः=छन्दःप्रत्यायकं शास्त्रम्। ज्यौतिषमाह—ग्रहाणां ज्योतिषां सूर्यादीनां

कल्प कहते हैं। इसे ही यजुर्वेद की विद्या भी कहते हैं। प्रकृति प्रत्यय के आधार पर सुबन्त तथा तिङन्त के रूप में पदों की सिद्धि का अन्वाख्यान (निर्वचन) करने वाले शास्त्र का नाम व्याकरण है। वेदमन्त्रों के प्रतिपद का विवेचन करनेवाले शास्त्र का नाम निरुक्त है। विविध प्रकार के छन्दों का विधान करने वाले शास्त्र को छन्दोविचिति अथवा छन्दःशास्त्र कहते हैं। ग्रहों की गणना करनेवाले शास्त्र का नाम ज्यौतिष है। अलङ्कार शास्त्र का व्याख्यान आगे प्रस्तुत किया जायेगा।

(यहाँ तक आचार्य राजशेखर ने अपौरुषेय शास्त्रों के रूप में चारों वेद, तथा छः वेदांगों का वर्णन किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि राजशेखर के मत में ब्राह्मण तथा वेदाङ्ग भी अपौरुषेय हैं)।

---

१. प्रकृतिप्रत्ययोपाधि-निपातादि-विभागशः ।
पदान्वाख्यानकरणं शास्त्रं व्याकरणं विदुः ॥

२. वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन वृत्तिः तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्॥

शास्त्राणि । तत्र वेदाख्यानोपनिबन्धनप्रायं पुराणमष्टादशधा । यदाहुः--

सर्गः प्रतिसंहारः कल्पो मन्वन्तराणि वंशविधिः ।
जगतो यत्र निबद्धं तद् विज्ञेयं पुराणमिति ॥

गणितं गत्यादिप्रतिपादनमस्ति यस्मिन् तद् ग्रहगणितम् । काव्यशोभावर्द्धकस्यालङ्कारस्यास्मिन्नधिकरणेऽदृष्टत्वादन्यत्र = ग्रन्थान्तरे तस्यास्ति विवेचनम् ।

अङ्गसहितमपौरुषेयं वाङ्मयं निरूप्य पौरुषेयं वाङ्मयं निर्दिशति—पौरुषेयमिति । पौरुषेयम् = कर्तृत्वेन पुरुषसम्बन्धसहितम् । पुराणं—पुरा भवं पुराणं = सर्गादिपञ्चलक्षणलक्षितं व्यासप्रणीतं शास्त्रं ब्रह्मादिपुराणम् । श्रवणप्रत्यक्षाभ्यामीक्षितस्यार्थस्य अनु = पश्चादीक्षा = पर्यालोचनमन्वीक्षा, अन्वीक्षाप्रयोजनमस्येति आन्वीक्षिकी अनुमानविद्या, तर्कशास्त्रम् । मीमांसा = वेदविचारशास्त्रम् । वेदार्थस्मारकत्वात् स्मृतिः तस्याः तन्त्रं स्मृतितन्त्रं = मन्वादिप्रणीतधर्मशास्त्रम् । इति = इत्थम् । चत्वारि = चतुःसंख्याकानि शास्त्राणि प्रोच्यन्ते ।

तत्र प्रथमं पुराणलक्षणमाह--तत्रेति । तत्र = पौरुषेयचतुःशास्त्रमध्ये वेदेषूपात्तानामाख्यानानां निबन्धनप्रायो यस्मिन्निति वेदोपाख्याननिबन्धनप्रायं = वेदसम्बन्ध्युपाख्यानानां निबन्धबहुलं पुराणं = पुराणशास्त्रम् । अष्टादशधा = ब्रह्म-पद्म-विष्णु-शिवादिभेदादष्टादशप्रकारकम् । पुराणस्वरूपमाह—सर्ग इति । यत्र = यस्मिन् साहित्ये, सर्गः = महत्तत्त्वादीनां नवधा सृष्टिः, प्रतिसंहारः = प्रतिरूपः सर्गः प्रतिसर्गः[1] ब्रह्मणः सृष्ट्यन्तरं दक्षादीनां सृष्टिः । कल्पयति नाशमिति कल्पः=सन्धिसहितचतुर्दशमन्वन्तरकालकलितः श्वेतवाराहप्रभृतित्रयस्त्रिंशत्संख्याकः । मन्वन्तराणि = स्वायम्भुवादीनां चतुर्दशमनूनामन्तराणि=अवसराः । वमति उद्गिरति पूर्वपुरुषानिति वंशः = अपत्यधारा, वंशस्य विधिः वंशविधिः = राजर्षि-महर्षीणां वंशवर्णनम्, एतत्पञ्चकं निबद्धं = वर्णितं तत् शास्त्रं पुराणं विज्ञेयमिति भावः ।

पौरुषेय शास्त्रों में पुराण, आन्वीक्षिकी, मीमांसा तथा स्मृतियों का परिगणन किया जाता है । पुराणों में प्रायः वेदों के आख्यानों का वर्णन किया गया है । पुराणों की संख्या अट्ठारह है । पुराण का लक्षण इस प्रकार किया गया है कि—

संसार की सृष्टि, प्रलय, कल्प, मन्वन्तर तथा वंशावली का वर्णन जिस साहित्य में किया गया हो, उसे पुराण कहते हैं ।

---

१. रुद्रो विराड् मनुर्दक्षो मरीच्याद्यास्तु मानसाः ।
यं यं सर्गं पृथक् चक्रुः प्रतिसर्गः स सम्मतः ॥

'पुराणप्रविभेद एवेतिहासः' इत्येके। स च द्विधा परक्रियापुराकल्पाभ्याम्। यदाहुः—

परक्रिया पुराकल्प इतिहासगतिर्द्विधा।
स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका॥

तत्र रामायणं भारतं चोदाहरणे। आन्वीक्षिकीं तु विद्यावसरे वक्ष्यामः। निगमवाक्यानां न्यायैः सहस्रेण विवेक्त्री मीमांसा। सा च द्विविधा विधिविवेचनी ब्रह्मनिदर्शनी च। अष्टादशैव श्रुत्यर्थस्मरणात्स्मृतयः। 'तानीमानि चतुर्दश विद्यास्था-

---

ननु इतिहासस्यापि पौरुषेयत्वात् कथं न पौरुषेये वाङ्मये तद्गणनेति जिज्ञासायामाह—पुराणप्रविभेद इति। पुराणप्रभेदः = पुराणविशेष एवेतिहास इत्यर्थः। स च = इतिहासश्च परक्रिया-पुराकल्पाभ्यां द्विधा = द्विप्रकारको भिद्यते। यदाहुः = तदेव स्पष्टयति–परक्रियेति। इतिहासः=पुरावृत्तम्, तस्य गतिः=स्वरूपम्। द्विधा = परक्रिया-पुराकल्पभेदाभ्यां द्विप्रकारकः, पूर्वा=इतिहासगतिः परक्रिया, एको नायको यस्यां सा एकनायका स्यात्। द्वितीया चेतिहास गतिः बहवो नायका यस्यां सा बहुनायका भवेत्। तत्र तयोर्मध्ये राम ईयते, स्तूयते, चरित्र्यते वर्ण्यते यस्मिन् शास्त्रे तद् रामायणम्, भरता = भरतवंशीया राजानः आख्यायन्ते अस्मिन्निति भारतम् = महाभारतम्। एवं चैकनायकत्वाद्रामायणं परक्रिया तथा बहुनायकत्वाद् महाभारतं पुराकल्प इति विवेकः। तस्मादितिहासपदेन रामायणं महाभारतञ्चोभयं गृह्यते। आन्वीक्षिकीस्वरूपं तु विद्याव्याख्यानावसरे वक्ष्यते इति नेहोपन्यस्यते। मीमांसां निर्वक्ति–निगमेति। निगमवाक्यानां = वेदवाक्यानाम्। सहस्रेण = अनेकैः। नीयन्ते प्राप्यन्ते विवक्षितार्था यैस्ते न्यायास्तैः न्यायैः = युक्तिभिः। विवेक्त्री = परस्परविरोधव्यावृत्त्या वस्तुस्वरूपनिर्णेत्री। मीमांसा = मीमांसाशास्त्रम्। सा च = मीमांसा। द्विविधा = द्विप्रकारिका। एका विधिविवेचनी = कर्मकाण्डवाक्यविचारयित्री, पूर्वमीमांसा। द्वितीया ब्रह्मनिदर्शनी = वेदान्तमहावाक्यतात्पर्य-

---

कुछ विद्वानों के अनुसार इतिहास पुराणों का ही एक अंग है। परक्रिया पुराकल्प के भेद से इतिहास दो प्रकार का होता है। परक्रिया वाले इतिहास में किसी एक ही नायक का वर्णन किया जाता है। परन्तु पुराकल्प में अनेक नायकों के चरित का उपस्थान होता है। रामायण, परक्रिया इतिहास का उदाहरण है, किन्तु महाभारत पुराकल्प इतिहास का। आन्वीक्षिकी वर्णन हम, विद्याओं के वर्णनप्रसंग में करेंगे। न्याय की कसौटी पर, अनेक तर्कों द्वारा वेद वाक्यों का विवेचन करनेवाली विद्या का नाम मीमांसा है। मीमांसा के भी दो भेद होते हैं। एक विधि का अर्थात् कर्म का विवेचन करती है तथा दूसरी ब्रह्म तत्त्व का

नानि, यदुत वेदाश्चत्वारः, षडङ्गानि, चत्वारि शास्त्राणि' इत्याचार्याः । तान्येतानि कृत्स्नामपि भूर्भुवःस्वस्त्रयीं व्यासज्य वर्त्तन्ते । तदाहुः—

विद्यास्थानानां गन्तुमन्तं न शक्तो जीवेद्वर्षाणां योऽपि साग्रं सहस्रम् ।
तस्मात्सङ्क्षेपादर्थसन्दोह उक्तो व्यासः संत्यक्तो ग्रन्थभीरुप्रियार्थम् ॥

'सकलविद्यास्थानैकायतनं पञ्चदशं काव्यं विद्यास्थानम्' इति यायावरीयः ।

निर्णायिका, उत्तरमीमांसा । स्मृतिमाह—अष्टादशैवेति । अष्टादशैव = अष्टादश-संख्याकैव । श्रुत्यर्थस्मरणात् = वेदाभिप्रायवर्णनात् । स्मृतयः = मन्वादिप्रणीतधर्म-शास्त्राणि । स्मृतयो हि श्रुत्यर्थमेवानुसरन्तीति भावः । तानीमानि = निर्दिश्य-मानानि, चतुर्दशविद्यास्थानानि = चतुर्दशविद्यानामधिकरणानि । कृत्स्नां = सर्वाम्, भूर्भुवस्वस्त्रयीं = भूर्लोक-भुवर्लोक-स्वर्लोकत्रितयम् । व्यासज्य = अभिव्याप्य । विद्या-स्थानप्रशंसायां पूर्वाचार्याणां प्रशस्तिमुद्धरति—**विद्यास्थानमिति** । योऽपि = यः कश्चिदपि, वर्षाणां = संवत्सराणाम्, साग्रं = सर्वम्, सहस्रं = दिव्यं वर्षसहस्रम्, जीवेत् = प्राणान् धारयेत्, तथापि स जनः, विद्यास्थानानां = चतुर्दशविद्यानाम्, अन्तं=पारम्, गन्तुं=यातुम्, न शक्तः=न समर्थो भवेत्, तस्मात्=शास्त्रपाराप्रापणात्, संक्षेपात् = समासेन, अर्थसन्दोहः=विद्यासमूहः, उक्तः = कथितः, ग्रन्थेभ्यः=विशाल-पुस्तकेभ्यः भीरवः = तज्जन्यायासेन भयशीला ये प्रियाः = बालाः तेभ्य इदं तदर्थं ग्रन्थभीरुप्रियार्थम्, अथवा ग्रन्थाध्ययनभयशीलानां बालानां प्रियार्थं प्रसन्नतार्थं यद्वा ग्रन्थात् = ग्रन्थाध्ययनात् भीरुर्या प्रिया=अवन्तिसुन्दरी तदर्थम् । व्यासः = विस्तारः, सन्त्यक्तः=परिहृतः । इदमस्य रहस्यम्–प्रियबालानां प्रियाया अवन्तिसुन्दर्या वा सुख-बोधाय विस्तारं विहाय संक्षेपेण सर्वे काव्यौपयिकाः पदार्था अत्र निर्दिष्टाः सन्ति ।

चतुर्दशविद्यास्थानातिरिक्तं काव्यमपि पञ्चदशं विद्यास्थानमिति व्यवस्थापयितुं

विवेचन करती है । (इस प्रकार कर्ममीमांसा को पूर्वमीमांसा तथा ब्रह्ममीमांसा को वेदान्त कहते हैं)। स्मृतियां वेदों के तात्पर्य का ही प्रतिपादन करती हैं। इस प्रकार चार वेद, छः शास्त्र (वेदाङ्ग) तथा पौरुषेय शास्त्र=पुराण, आन्वीक्षिकी मीमांसा तथा स्मृति ये सब मिलकर १४ विद्यायें आचार्यों के मत में हैं। उपर्युक्त १४ विद्यायें भूः, भुवः, स्वः इन तीन लोकों में व्याप्त सभी वस्तुओं में अनुस्यूत हैं। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध है।

सहस्र वर्षों की दीर्घ आयु को प्राप्त करनेवाला व्यक्ति भी उपर्युक्त चौदह विद्याओं में पारंगत नहीं हो सकता है। अतः यहाँ पर उन विद्याओं का संक्षेप में ही वर्णन किया गया है। तथा ग्रन्थ के विशद कलेवर से डरनेवाले सज्जनों की प्रसन्नता के लिए ही इसका और अधिक विस्तार नहीं किया गया है। समस्त विद्याओं से श्रेष्ठ १५वीं विद्या, काव्यविद्या है।

गद्यपद्यमयत्वात् कविधर्मत्वात् हितोपदेशकत्वाच्च। तद्धि शास्त्राण्यनुधावति। 'वार्त्ता कामसूत्रं शिल्पशास्त्रं दण्डनीतिरिति पूर्वैः सहाष्टादशविद्यास्थानानि' इत्यपरे। आन्वीक्षिकी त्रयी वार्त्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः। 'दण्डनीतिरेवैका विद्या' इत्यौशनसाः। दण्डभयाद्धि कृत्स्नो लोकः स्वेषु स्वेषु कर्मस्ववतिष्ठते। 'वार्त्ता

स्वमतमाह—सकलेति। सकलविद्यास्थानैकायतनं=सकलानां=साङ्गानां, चतुर्दशानां विद्यास्थानानां=वेदादीनाम् एकायतनं=सङ्गमस्थलं काव्यं=कविकर्म पञ्चदश-संख्यापूरकं विद्यास्थानं=शास्त्राधिकरणमित्यर्थः। काव्यस्य विद्यास्थानैकायतनत्व-हेतुमाह—गद्य-पद्येति। गद्यं च पद्यं गद्यपद्ये ते एव स्वरूपमस्येति गद्यपद्यमयं तस्य तत्त्वं तस्मात् गद्यपद्यमयत्वात्=गद्यपद्यस्वरूपकत्वात्, कविधर्मत्वात्=कवि-रचनात्मकत्वात् पुनः हितमुपदिशतीति हितोपदेशकं तस्य भावः तत्त्वं तस्मात् हितोपदेशकत्वात्। तद्धि=काव्यं हि शास्त्राणि=विद्याः, अनुधावति=अनु-सरति। काव्यस्य शास्त्रानुगन्तृत्वं तु प्रसिद्धमेवास्ति। केचनाचार्या अष्टादशविद्या-स्थानानि प्रचक्षते तानि निर्दिशति—वार्तेति। वृत्तिः जीविका यस्यामस्तीति वार्ता= कृषि-गोरक्षण-वणिज्या-कुसीदादिरूपा। सूत्रणात् सूत्रं काम्यते असौ कामः कामस्य सूत्रं कामसूत्रं=कामशास्त्रम्। शिल्पं कलादि कर्म तस्य शास्त्रं शिल्पशास्त्रं= शिल्पिनां कर्तव्यनिर्देशकं शास्त्रम्। दण्डः आन्वीक्षिकीत्रयीवार्तानां योगक्षेमसाधकः तस्य नीतिः नयः इति दण्डनीतिः=दण्डनीत्युपदेशकं शास्त्रम्। इति=इमानि चत्वारि पूर्वैः=पूर्वोक्तैः चतुर्दशभिः विद्यास्थानैः सह=साकम् विद्यास्थानानि अष्टादश इत्यपरे=अन्ये विपश्चितो जगदुरिति भावः। विद्यां विवेचयति— आन्वीक्षिकीति—प्रत्यक्षानुमानाभ्यामीक्षितस्य अन्वीक्षणमन्वीक्षा, तया प्रवर्तते इत्यान्वीक्षिकी=न्यायविद्या, तर्कशास्त्रम्। त्रयी=ऋग्यजुःसामाख्य-वेदत्रयी। वार्ता=कृषिपाशुपाल्यवणिज्यात्मिका हि वार्ता विज्ञेया। परेषां विद्याविकल्पानाह— केवलं दण्डनीतिरेका विद्येति औशनसाः=शुक्राचार्यशिष्याः दण्डभयाद्धि=दण्ड-

---

है। यह यायावरगोत्रोत्पन्न राजशेखर का मत है। इसमें गद्य और पद्य का सन्निवेश होता है। इस विद्या में कवि की सहज स्फुरणा का सन्निवेश है और इसमें हितकारी उपदेश का संग्रह। यही कारण है कि सभी शास्त्र इस हितकारी विद्या का अनुगमन करते हैं। कतिपय अन्य आचार्यों के मत में पूर्ववर्णित चतुर्दश विद्याओं में यदि, वार्ता, कामसूत्र, शिल्पशास्त्र तथा दण्डनीति को जोड़ दिया जाय तो समस्त विद्याओं की संख्या १८ हो जाती है। आचार्य उशना (शुक्राचार्य) के मत में दण्डनीति ही एकमात्र विद्या है, क्योंकि दण्ड के भय से ही सम्पूर्ण लोक (समाज) अपने-अपने कर्त्तव्यों के परिपालन में सजग रहता है। किन्तु

दण्डनीतिर्द्वे विद्ये' इति बार्हस्पत्याः। वृत्तिविनयग्रहणं च स्थितिहेतुर्लोकयात्रायाः। त्रयीवार्त्तादण्डनीतयस्तिस्रो विद्याः इति मानवाः। त्रयी हि वार्त्तादण्डनीत्योरुपदेष्ट्री। 'आन्वीक्षिकीत्रयीवार्त्तादण्डनीतयश्चतस्रो विद्याः' इति कौटल्यः। आन्वीक्षिक्या हि विवेचिता त्रयी वार्त्तादण्डनीत्योः प्रभवति। 'पञ्चमी साहित्यविद्या' इति यायावरीयः। सा हि चतसृणामपि विद्यानां निस्यन्दः। आभिर्धर्मार्थौ यद्विद्यात्तद्विद्यानां विद्यात्वम्। तत्र त्रयी व्याख्याता। द्विधा चान्वीक्षिकी पूर्वोत्तरपक्षाभ्याम्। अर्हद्भदन्तदर्शने लोकायतं च पूर्वः पक्षः। साङ्ख्यं न्यायवैशेषिकौ चोत्तरः।

भयादेव। वार्तादण्डनीतिश्च विद्ये इति बार्हस्पत्याः = बृहस्पतिमतानुयायिनः। स्थितिहेतुः = सञ्चालनकारणम्। लोकयात्रायाः = संसारप्रपञ्चस्य। मनुशिष्याणां मतं व्याकरति–त्रयीति। तिस्रो विद्येति मानवा मनुमतानुयायिनः। त्रय्या उपयोगमाह–त्रयी हीति। उपदेष्ट्री = नियामिका। कौटिल्यमतमवतारयति–आन्वीक्षिकीति। चतस्रो विद्या इति कौटिल्यः = कुटिलस्य तन्नाम्नो ऋषेः गोत्रापत्यं पुमान् कौटिल्यः। प्रभवति = सञ्चालने समर्था भवति। साहित्यस्य चतुर्विद्यातिरिक्तत्वं स्वकीयं मतमुपदिशति–पञ्चमीति। साहित्यविद्या हि आन्वीक्षिक्यादीनां चतसृणां विद्यानां निस्यन्दः। अर्थात् सर्वासां सारभूतत्वात् साहित्यं पञ्चमी विद्या। कथममाविद्येति शङ्कामपनुदन्नाह–आभिरिति। विद्यात्वं = धर्माद्यर्थवेदनकरणत्वम्। तत्र = तासु विद्यासु त्रयी व्याख्याता = स्वरूपतया निर्दिष्टा। आन्वीक्षिकी निरूपयति–द्विधेति। पूर्वोत्तरपक्षाभ्यां = पूर्वपक्षेण उत्तरपक्षेण च। तत्र पूर्वं

आचार्य बृहस्पति के मत का अनुसरण करनेवाले आचार्यों का मत है कि वार्ता तथा दण्डनीति ये ही दो प्रधान विद्यायें हैं, क्योंकि वृत्ति-जीविका विनय का परिपालन अनुशासन के द्वारा ही समाज की स्थिरतापूर्वक लोकयात्रा सम्भव होती है। आचार्य मनु के द्वारा उपदिष्ट मत के अनुयायिओं की दृष्टि में त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति ये तीन विद्यायें स्वीकार्य हैं। आचार्य मनु का विचार है कि त्रयी अर्थात् वेदों द्वारा ही वार्ता तथा दण्डनीति का उपदेश होता है। आचार्य कौटिल्य के मत में चार विद्यायें आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दण्डनीति हैं। आन्वीक्षिकी के द्वारा सम्यक् रूप से प्रतिपादित वेद त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति का मार्ग प्रशस्त करती है। पाँचवी विद्या, साहित्य विद्या है, यह यायावरीय राजशेखर का मत है। क्योंकि साहित्य विद्या उन चारों विद्याओं—आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता एवं दण्डनीति का सार तत्त्व है, इनके द्वारा धर्म तथा अर्थ की सिद्धि होने पर ही विद्याओं की सार्थकता मानी जा सकती है। त्रयी अर्थात् वेदों का व्याख्यान पहले ही किया जा चुका है। पूर्वपक्ष तथा उत्तरपक्ष के भेद से आन्वीक्षिकी विद्या दो प्रकार की है।

त इमे षट् तर्काः । तत्र च तिस्रः कथा भवन्ति वादो, जल्पो, वितण्डा च । मध्यस्थयोस्तत्त्वावबोधाय वस्तुतत्त्वपरामर्शो वादः । विजिगीषोः स्वपक्षसिद्धये छलजातिनिग्रहादिपरिग्रहो जल्पः । स्वपक्षस्यापरिग्रहित्री परपक्षस्य दूषयित्री वितण्डा ।

पक्षं दर्शयति—अर्हेति । अर्हद्भदन्तदर्शने = अर्हद्भदन्ताभ्यां निर्मिते दर्शने इति अर्हद्भदन्तदर्शने = जैनदर्शनं बौद्धदर्शनं च । लोकेषु आयतं विस्तीर्णं मनोहरत्वादिति लोलायतं = चार्वाकदर्शनम् । उत्तरपक्षमाह—सांख्यमिति । सम्यक् ख्यायते, प्रकाश्यते वस्तुतत्त्वमनयेति संख्या = सम्यग्ज्ञानं तस्याः प्रकाशमानमात्मतत्त्वं सांख्यं = अथवा संख्यायन्ते पञ्चविंशति तत्त्वानि यस्मिन् तत् सांख्यं = प्रकृतिपुरुषान्यताख्यातौ मोक्ष इति प्रतिपादकं कापिलं शास्त्रम् । नीयन्ते, प्राप्यन्ते पदार्था अनेनासौ न्यायः गौतममुनिप्रणीतं शास्त्रम् । विशेषमधिकृत्य कृतो ग्रन्थो वैशेषिकः कणादप्रणीतं शास्त्रम् । न्यायश्च वैशेषिकश्चेति न्यायवैशेषिकौ=न्यायदर्शनवैशेषिकदर्शने च उत्तरः = उत्तरपक्षः । षट् तर्काः = इमे षट् तर्कपदव्यपदेश्याः । सन्तीति शेषः । तत्र = षण्णां तर्काणां मध्ये । तिस्रः कथाः = पूर्वपक्षोत्तरवाक्यसन्दर्भाः भवन्ति । काः ता इत्याह—वाद इति तत्र वादजल्पवितण्डासु–वादमाह मध्यस्थेति । मध्यस्थयोः=वादिप्रतिवादिशास्त्रनिर्णेतृत्वेनावस्थितयोः, तत्त्वावबोधाय=तत्त्वज्ञानाय, वस्तुतत्त्वपरामर्शः = वस्तुतत्त्वस्य निश्चयविचारः, एव वादः । जल्पमाहविजिगीषोरिति । विजिगीषोः=वादकाले स्वस्वपक्षविजयमिच्छ्वोः । स्वपक्षसिद्धये=स्वकीयमतस्थापनाय छलस्य जातेः विग्रहस्य च परिग्रहः स्वीकारो जल्पो निगद्यते । वितण्डामाह–स्वपक्षस्येति । स्वपक्षस्य = निजपक्षस्य, अपरिग्रहित्री=अस्थापयित्री, परपक्षस्य = अन्यदीयपक्षस्य, दूषयित्री = छलादिभिरन्यमतविदूषिका । वितण्ड्यते विहन्यते परपक्षोऽनयासौ वितण्डा = स्वपक्षस्थापनापेक्षया परपक्षव्युदास इति भावः । जल्पे वितण्डायां च विजगीषोः शक्तिपरीक्षामात्रं फलं वादे तु तत्त्वनिरूपणं फलं भवति ।

जैन, बौद्ध तथा लोकायत दर्शन की गणना पूर्वपक्ष में की जाती है तथा सांख्य, न्याय, एवं वैशेषिक को उत्तर पक्ष में माना जाता है । इस प्रकार षट् तर्क अर्थात् छः दर्शन शास्त्र हैं । इनमें तत्त्व निर्णयार्थ तीन प्रकार की कथायें होती हैं । (१) वाद, (२) जल्प, (३) वितण्डा । किसी तत्त्व-विशेष की जिज्ञासा से प्रेरित, विशेषज्ञ की मध्यस्थता में पक्ष-प्रतिपक्ष के रूप में प्रस्तुत तर्कों का नाम वाद है । जिस तर्क में स्वपक्ष की विजय तथा परपक्ष की पराजय की भावना निहित होती है, तथा अपने पक्ष की सिद्धि हेतु छल, जाति तथा निग्रह आदि युक्तियों का आश्रय लिया जाय उसे जल्प कहा जाता है । जहाँ पर अपने पक्ष की पुष्टि की अपेक्षा, केवल पर पक्ष के दोषों को ही सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है,

कृषिपाशुपाल्ये वणिज्या च वार्त्ता। आन्वीक्षिकीत्रयीवार्त्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डस्तस्य नीतिर्दण्डनीतिः तस्यामायत्ता लोकयात्रेति शास्त्राणि। सामान्यलक्षणं चैषाम्—

सरितामिव प्रवाहास्तुच्छाः प्रथमं यथोत्तरं विपुलाः।
ये शास्त्रसमारम्भा भवन्ति लोकस्य ते वन्द्याः॥

वार्तादीनां स्वरूपं निर्दिशन्नाह—कृषीति। कृषिः = क्षेत्रबीजवापपरिकर्मोपदेशकं [1]पराशरनिर्मितं शास्त्रम्। गवाश्वादिरक्षाप्रकारोपदेशकं गौतम-शालिहोत्रादि प्रणीतं शास्त्रम्, वणिज्या च क्रयविक्रयव्यवहारः तत्तन्त्रं विदेहराजप्रणीतम्। कृषिपाशुपाल्यवणिज्येति तत्त्रयं वार्ता प्रोच्यते। अनन्यलाभो योगः, लब्धस्य संरक्षणं लाभः तयोः साधनः सिद्धिकर्ता दण्डः तस्य नीतिः दण्डनीतिः। तस्यां दण्डनीतौ आयत्ता = अधीना, लोकयात्रा = लोकव्यवहारः, इति—एवं रूपाणि शास्त्राणि प्रवर्तन्ते इति तात्पर्यम्। एषां = शास्त्राणाम्। सामान्यलक्षणं = साधारणलक्षणमपि यथा सरितामिति। सरितां नदीनाम्, प्रवाहाः जलस्रोतांसि, इव यथा, पूर्वं प्रथमं निर्झरनिर्गमनावसरे, तुच्छाः = स्वल्पाः, ह्रस्वाः, सूत्ररूपेण स्थितत्वात् संक्षिप्ताः, यथोत्तरं = उत्तरोत्तरं, क्रमशः, विपुलाः = विशालाः, दीर्घव्याख्याभाष्योदाहरणैर्विस्तृताः, ये शास्त्रसमारम्भाः = शास्त्रोपक्रमाः भवन्ति, ते लोकस्य = जगतः, वन्द्याः = वन्दनीयाः, भवन्ति = जायन्ते। इदमस्य तात्पर्यम् = यथा नदीनां स्रोतांसि निर्झरनिगमनावसरे अत्यल्पाः स्थलविशेषं प्राप्य क्रमशो वर्द्धन्ते तथैव, सूत्ररूपेण संक्षिप्ता अपि शास्त्रसमारम्भाः पश्चात् भाष्यवार्तिकोदाहरणादिना-

---

उसे वितण्डा कहा जाता है। कृषिकार्य, पशुपालन, तथा वाणिज्य को वार्ता कहा जाता है। आन्वीक्षिकी, त्रयी तथा वार्ता आदि का परिपालन दण्ड के द्वारा होता है। अतः उसकी नीति को दण्डनीति कहा जाता है। दण्डनीति के द्वारा ही सम्पूर्ण लोक का योग-क्षेम तथा व्यवहार सिद्ध होता है। ऊपर वर्णित किये गये ये ही शास्त्र हैं। इनका सामान्य लक्षण निम्नलिखित है—

जिस प्रकार नदियाँ अपने उद्गम स्थल से लघुरूप में निकल कर, उत्तरोत्तर व्यापक एवं गम्भीर हो जाती हैं, ठीक उसी प्रकार जिन शास्त्रों का प्रारम्भ लघु कलेवर के रूप में होता है, परन्तु आगे कालक्रम से उनका रूप अत्यन्त विशद, व्यापक एवं गम्भीर होता जाता है, वे शास्त्र समाज की श्रद्धा के पात्र बन जाते हैं।

---

१. फलत्यवेक्षिता स्वर्णं दैन्यं सैषानवेक्षिता।
कृषिः कृषिपुराणज्ञ इत्युवाच पराशरः॥

सूत्रादिभिश्चैषां प्रणयनम् । तत्र सूत्रणात् सूत्रम् । यदाहुः—

अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतोमुखम् ।
अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रकृतो विदुः ॥

सूत्राणां सकलसारविवरणं वृत्तिः । सूत्रवृत्तिविवेचनं पद्धतिः । आक्षिप्य

वर्द्धमाना विस्तृताः सन्तो लोकप्रिया भवन्ति । कथं शास्त्रारम्भाः पूर्वं लाघवः पश्चाद् विपुला भवन्तीति जिज्ञासायामाह—सूत्रादिभिरिति । सूत्रादिभिः = सूत्र-भाष्यवार्तिकवृत्तिप्रभृतिभिः । एषां = शास्त्राणाम्, प्रणयनं = रचना विपुलीभावश्च जायते । किं तत् सूत्रादिकमिति शिष्यजिज्ञासामाह–तत्रेति । तत्र = सूत्रादिषु, सूत्रणात् = पदार्थस्य वेष्टनात् सूत्रं यदाहुः श्रीव्यासमहर्षयोऽग्निपुराणे–अल्पाक्षर-मिति । सूत्रकृतः = सूत्रनिर्मातारो महर्षयः, सूत्रम् अल्पाक्षरं = अल्पानि स्वल्पा अक्षराणि वर्णा यस्मिन् तत् अल्पाक्षरं = स्वल्पवर्णकम्, नास्ति सन्देहो यस्मिन् तत् असन्देहं = सन्देहरहितम्, सारोऽस्ति अस्मिन् इति सारवत् = बहूनां लक्ष्याणां साधुत्वादर्थगाम्भीर्यात्मिकसारसहितम्, क्वचिदनुवृत्या, क्वचिच्चापकर्षणात् पूर्वत्र परत्र चानुग्राहकत्वाद् विश्वतोमुखं = चतुरस्रम् = सर्वत्र सुलभान्वयम्, अपवादबाधा-दिकं पुरस्कृत्य प्रणीतम्, नास्ति स्तोभं = स्तम्भनं यस्मिन् तत् अस्तोभं = अर्थ-प्रतीतिप्रतिबन्धकविरहितं निरर्थकशब्दशून्यं वा अत एव अनवद्यम् = अवद्यो दोषः तद्रहितं निर्दोषम् एवंभूतं सूत्रं सूत्रकृतो वदन्तीति भावः । एवञ्चाल्पाक्षरादि-सन्धानावद्यादिगुणविशिष्टेन सूत्ररूपेण मुनयः भगवतो महेश्वरस्याज्ञानुसारं शास्त्रं कुर्वन्तीति भावः[1] ।

वृत्यादीनां लक्षणं कर्तुमुपक्रमते—सूत्राणामिति । सूत्रसम्बन्धिनः सकलस्य

(प्रस्तुत प्रकरण में यह उल्लेख करना अत्यावश्यक है कि आचार्य राजशेखर के मत में शास्त्रों का प्रारम्भिक प्रणयन सूत्र-शैली में किया जाता है। परन्तु कालान्तर में व्याख्या, भाष्य, टीका तथा वृत्ति के रूप में उनका कलेवर बढ़ जाता है) । शास्त्रों का प्रणयन सूत्रों के द्वारा होता है। संक्षेप में अधिक कथन का नाम सूत्र है। सूत्र का लक्षण निम्नलिखित है :—

सूत्रकारों का कथन है कि जिसमें थोड़े अक्षर हों, सन्देह से परे, सारयुक्त, अनावश्यक शब्दों से रहित तथा शुभ अर्थ का प्रकाशन जिसके द्वारा किया जाय उसे सूत्र कहते हैं।

सूत्रों के सारतत्त्व का प्रकाशन करने वाली व्याख्या को वृत्ति कहते हैं। जिसके द्वारा

---

१. शास्त्रं निर्णायकं न्याय्यकलापं मुनिसत्तमाः ।
सूत्ररूपेण कुर्वन्ति शिवस्यैवाज्ञयैव हि ॥

भावरणाद्भाष्यम् । अन्तर्भाष्यं समीक्षा । अवान्तरार्थविच्छेदश्च सा । यथासम्भवमर्थस्य टीकनं टीका । विषमपदभञ्जिका पञ्जिका । अर्थप्रदर्शनकारिका कारिका । उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकमिति शास्त्रभेदाः ।

सारांशस्य यत्र विवरणं = विवेचनं वर्तते सा वृत्तिरिति निगद्यते । पद्धतिमाह—सूत्रेति । सूत्रस्य वृत्तेश्च विवेचनं विचारो यत्र भवति सा पद्धतिः कथ्यते । भाष्यमाह—आक्षिप्येति । पूर्वपक्षत्वेन शङ्कामुत्थाप्य भाषणात् सिद्धान्तपक्षत्वेनोत्तरकथनं यत्र जायते तद् भाष्यमुच्यते । अर्थात् लक्ष्यानुरोधेन नवनियमनिर्माणम् अन्यथा स्थितस्य खण्डनं व्याख्यानान्तरं चाक्षेपं कृत्वा समीक्षा भवति भाष्यमध्ये । अतः समीक्षापरिभाषामाह—**अन्तरिति** । भाष्यस्य अन्तः अन्तर्भाष्यम् = भाष्ये निहितानां गम्भीरविषयाणां विवेचनं भाष्यमध्येऽवान्तरार्थं विशिष्टकल्पनं वा समीक्षा । परिभाषान्तरमाह—**अवान्तरेति** । अवान्तरार्थस्य सिद्धान्तितार्थविवेचनप्रसङ्गे समागतस्य अवान्तरार्थस्य विच्छेदः = पृथक्करणमपि सा = समीक्षा कथ्यते । **टीकामाह**—यथासम्भवं = यथाशक्यम्, अर्थस्य = शब्दार्थस्य टीकनं प्रकाशनं टीकेति तात्पर्यम् । पञ्जिकामाह—**विषमेति** । विषमाणि = दुरूहाणि पदानि भनक्तीति विषमपदभञ्जिका = कठिनपदपार्थक्यप्रदर्शिका, पच्यन्ते व्यक्तीक्रियन्तेऽर्था अनयेति पञ्जिका प्रोच्यते । **कारिकामाह—अर्थेति** । अर्थप्रदर्शनकारिका = सूत्रार्थप्रदर्शनकर्त्री छन्दोवद्धा वाक् कारिका कथ्यते । **वार्तिकमाह**—उक्ताश्चानुक्ताश्च दुरुक्ताश्च उक्तानुक्तदुरुक्ताः तेषां चिन्ता उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता = उक्तानां सूत्रे कथितानाम् अनुक्तानां सूत्रेऽप्रोक्तानाम्, दुरुक्तानां कठिनशब्दैः कथितानां च अर्थानां चिन्तनं विचारो यत्र तद् [1]वार्तिकमिष्यते । इति=इत्थं, शास्त्रप्रभेदः=शास्त्रविभागः ।

सूत्रों की वृत्ति का विवेचन किया जाय उसे पद्धति कहा जाता है। जिसमें स्वयं ही पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष प्रस्तुत करते हुये शंका-समाधान पूर्वक विवेचन किया जाता है, उसे भाष्य कहते हैं। भाष्य के अन्तर्गत दुरूह विषयों का अन्तर्भाष्य—अर्थात् स्पष्टीकरण समीक्षा कहलाती है। भाष्य में निहित विभिन्न अवान्तर विषयों का विभागशः विवेचन करना भी समीक्षा कहलाती है। विषय का सरलतम रूप में प्रकाशन करना टीका है। कठिनतम = दुरूह पदों को तोड़कर उनका पृथक्-पृथक् विवेचन पजिका कहलाती है। किसी भी विषय का सरलतम रूप से प्रस्तुतीकरण कारिका है। किसी शास्त्र में प्रतिपादित, किन्तु कठिन, अप्रतिपादित अथवा ठीक से न प्रतिपादित अर्थ के प्रकाशन की प्रक्रिया का

---

१. उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते ।
तं ग्रन्थं वार्तिकं प्राहुः वार्तिकज्ञा मनीषिणः ॥

भवति प्रथयन्नर्थं लीनं समभिप्लुतं स्फुटीकुर्वन् ।
अल्पमनल्पं रचयन्ननल्पमल्पं च शास्त्रकविः ॥

शास्त्रैकदेशस्य प्रक्रिया प्रकरणम् । अध्यायादयस्त्ववान्तरविच्छेदाः कृतिभिः स्वतन्त्रतया प्रणीता इत्यपरिसङ्ख्येया अनाख्येयाश्च । शब्दार्थयोर्यथावत्सहभावेन विद्या साहित्यविद्या । उपविद्यास्तु चतुःषष्टिः । ताश्च कला इति विदग्धवादः ।

उपदर्शितशास्त्रज्ञस्य कवेः प्रभावं प्रदर्शयति—भवतीति । शास्त्रविषयक-रचनापरः कविः, लीनं = प्रच्छन्नं, गूढं, अर्थं = वाच्यार्थम्, प्रथयन् = विशदयन्, समभिप्लुतं = सङ्गतिरहितमिव ज्ञायमानम्, अस्फुटमर्थम्, स्फुटीकुर्वन् = स्पष्टं कुर्वन्, अल्पं = संक्षिप्तमर्थम्, अनल्पं = विस्तृतम्, यथाप्रयोजनम् अल्पं च रचयन् = निर्मि-माणः शास्त्रकविः = शास्त्राणां ज्ञाता कविः, भवति = शास्त्रकविरित्युपाधिं लभते । यतोहि काव्यप्रणयने प्रावीण्यार्थं शास्त्रवैदुष्यमत्यावश्यकमिति हृदयम् ।

शास्त्रनिरूपणानन्तरं शास्त्रैकदेशं प्रकरणं निर्दिशति—शास्त्रैकदेशस्येति । शास्त्रस्य एकदेशः शास्त्रैकदेशः तस्य प्रक्रिया प्रस्तावोऽधिकरणं वा शास्त्रैकदेश-प्रक्रिया = शास्त्रस्यैकभागः प्रकरण[1]पदेन व्यपदिश्यते । अवान्तरे मध्ये विच्छेदाः विरामा इति अवान्तरविच्छेदाः, एतत्स्वरूपा अध्यायाः आदयो येषां ते अध्या-यादयः = ग्रन्थ[2]सन्धिसर्गप्रभृतयः, कृतिभिः = विद्वद्भिः, स्वतन्त्रतया = स्वेच्छया, प्रणीताः = निर्मिताः इति = अतः, अपरिसंख्येयाः = अपरिख्यातुं योग्याः, गणयितु-मशक्याः, अनाख्येयाः = आख्यातुं दुःशकाः सन्तीति शेषः ।

पञ्चम्याः साहित्यविद्यायाः स्वरूपमुपदिशति—शब्दार्थयोरिति । शब्दार्थयोः = वाच्यवाचकयोः, यथावत् = यथोचितम्, सहभावेन = साहित्येन वर्तमाना विद्या साहित्यविद्या = अलङ्कारादि-प्रतिपादकशास्त्रम् निगद्यते । शब्दार्थौ सहितौ काव्य-

---

नाम वार्तिक है । यही शास्त्रों के भेद हैं ।

शास्त्र कवि गोपनीय अर्थ को प्रकट करता है, सन्देहयुक्त वचनों को स्पष्टरूप से व्यक्त करता है, संक्षिप्त भावों को व्यापक तथा विस्तृत भावों को संक्षेप में प्रकट करता है ।

शास्त्र के किसी विशिष्ट भाग की प्रक्रिया को प्रकरण कहा जाता है । अध्याय इत्यादि इसके अवान्तर भेद होते हैं । रचनाकार विद्वानों ने इनकी रचना में पूर्ण स्वातन्त्र्य का अवलम्बन लिया है । अतः इनकी संख्या तथा सम्पूर्ण विषय का वर्णन सम्भव नहीं है । जिस विद्या में शब्द और अर्थ का उचित सम्प्रयोग किया जाय उसे साहित्य विद्या कहते हैं ।

---

१. शास्त्रैकदेशसंसिद्धं शास्त्रकार्यान्तरे स्थितम् । आहुः प्रकरणं नाम शास्त्रभेदविचक्षणाः ॥
२. स्थानं प्रकरणं चैव पर्वोल्लासाह्निकानि च । स्कन्धश्च स्तवकोद्योतौ पादोऽमी ग्रन्थसन्धयः ॥

स आजीवः काव्यस्य । तमौपनिषदिके वक्ष्यामः ।

इत्यनन्तोऽभियुक्तानामत्र संरम्भविस्तरः ।
त्यक्तो निपुणधीगम्यो ग्रन्थगौरवकारणात् ॥

इति महाकविराजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे शास्त्रनिर्देशनामको द्वितीयोऽध्यायः ।

—:०:—

मिति सिद्धान्त एवात्रापि कवे राजशेखरस्य इष्टा इत्यर्थः । ताः = चतुःषष्टिरूपविद्या, कलाः सन्ति इति = एवम्, विदग्धानां वादः = चतुःषष्ट्युपविद्यानामेव विद्वत्समाजे कलात्वेन प्रसिद्धिः । सः = विदग्धवादः । काव्यस्य = काव्यकर्तुः, आजीवः = उपजीवनम् । तमौपनिषदके वक्ष्यामः = तं=कलोपजीवनम् । औपनिषदिकेऽधिकरणे, वक्ष्यामः = निरूपयिष्यामः ।

अध्यायमुपसंहरति—इत्यनन्त इति । अभियुक्तानां = विपश्चिताम्, अत्र = शास्त्रे, इति = इत्थम् । संरम्भस्य विस्तारः संरम्भविस्तारः = कृतिप्रसारः, अनन्तः = अपरिसंख्येयः आस्ते, स हि निपुणा प्रवीणा धीः बुद्धिर्येषां ते निपुणधियः तेषां गम्यः निपुणधीगम्यः = वैशद्येन सूक्ष्ममतिसंवेद्यः । अतः ग्रन्थस्य गौरवं ग्रन्थगौरवं तदेव कारणं तस्मात् ग्रन्थगौरवकारणात् = 'व्यासः = विस्तारः त्यक्तो ग्रन्थभीरुप्रियार्थम्' इति पूर्वंप्रतिज्ञातत्वेन ग्रन्थविस्तारभयात् त्यक्तः = परित्यक्तः, उपेक्षित इति भावः ।

इति श्रीमुखशाण्डिल्यगोत्रजन्मना डॉ० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना कृतायां काव्यमीमांसायाः प्रथमेऽधिकरणे विमलाख्यायां व्याख्यायां शास्त्रनिर्देशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

—:०:—

उपविद्याओं की संख्या ६४ हैं । जिन्हें ही विद्वज्जन कला कहते हैं । ये कलायें ही काव्य का जीवन हैं । इनका वर्णन औपनिषदिक प्रकरण में किया जायेगा ।

विद्वानों द्वारा प्रणीत कृतियों की संख्या अपरिमित है । तथा वे चतुरबुद्धि के धनी व्यक्तियों के लिए ही सर्वथा बोधगम्य हैं । अतः ग्रन्थ के कलेवर की वृद्धि के भय से उनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है ।

इस प्रकार राजशेखरकृत काव्यमीमांसा के कविरहस्यनामक प्रथम अधिकरण में शास्त्रनिर्देशनामक द्वितीय अध्यायकी 'सुधा' हिन्दीव्याख्या समाप्त ।

—:०:—

तृतीयोऽध्यायः
काव्यपुरुषोत्पत्तिः ३

एवं गुरुभ्यो गिरः पुण्याः पुराणीः शृणुमः स्म, यत्किल धिषण शिष्याः कथाप्रसङ्गे पप्रच्छुः–कीदृशः पुनरसौ सारस्वतेयः काव्यपुरुषो वो गुरुः ? इति। स तान् बृहताम्पतिरूचे।

पुरा पुत्रीयन्ती सरस्वती तुषारगिरौ तपस्यामास। प्रीतेन मनसा तां विरिञ्चः प्रोवाच—'पुत्रं ते सृजामि।' अथैषा काव्यपुरुषं सुषुवे। सोऽभ्युत्थाय सपादोपग्रहं छन्दस्वतीं वाचमुदचीचरत्—

अथ काव्यपुरुषस्योत्पत्तिविषयकं प्रसङ्गं प्रदर्शयति—एवमिति। एवं = इत्थं, गुरुभ्यः = आचार्येभ्यः, गिरः = वाचः, पुण्याः = पवित्राः, पुराणीः = प्राचीनाः, शृणुमः स्म = अश्रौष्म, धिषणं = बृहस्पतिम्, कथाप्रसङ्गे = वार्तालापावसरे, सारस्वतेयः = सरस्वतीपुत्रः, वो गुरुः = युष्माकामाचार्यः, कीदृशः = किंरूपः, इति = एतत्, पप्रच्छुः = अप्राक्षुः। बृहतां पतिः = बृहस्पतिः = देवगुरुः। ऊचे = उक्तवान्।

पुरा=पूर्वस्मिन् समये, आत्मनः पुत्रमिच्छति पुत्रीयति पुत्रीयतीति पुत्रीयन्ती = पुत्रं कामयमाना, सस्वतीति-सरः ज्ञानं सरोऽस्या अस्तीति सरस्वती = ज्ञानाधिष्ठात्री वाग्देवी। तुषारस्य गिरिः तुषारगिरिः तस्मिन् तुषारगिरौ=हिमालये, तपस्यामास= तपश्चचार। तपसा=प्रसन्नमनसा, तां = सरस्वतीं देवीम्, विरिञ्चः = ब्रह्मा, प्रोवाच = अवोचत्। पुत्रं ते सृजामि = हे सरस्वति ! तव भक्त्या तुष्टोऽहं पुत्रकारणं बीजं त्वयि निषिञ्चामि। अथ = निषेकानन्तरम्, एषा=पुत्रकामा सरस्वती, काव्यपुरुषं = काव्यपुरुषनामानं पुत्रं सुषुवे=जनयामास। सः = जातमात्रः काव्यपुरुषः उत्थाय =

हमने गुरुजनों से ये पुनीत एवं पुरातन बातें सुनी है कि एक बार प्रसंगवश शिष्यों ने अपने गुरु बृहस्पति से प्रश्न किया कि "आपके गुरु सरस्वती के पुत्र काव्यपुरुष कौन हैं ?" तब बृहस्पति ने अपने शिष्यों को बताया कि :—

पुरातन काल की घटना है कि एक बार देवी सरस्वती ने पुत्रप्राप्ति की कामना से हिमालय पर्वत पर दीर्घ काल तक तपश्चर्या की। सरस्वती की तपस्या से परम प्रसन्न मन वाले ब्रह्मा जी ने कहा—'मैं तुम्हारे लिए पुत्र का सृजन करूँगा'। इस वरदान के पश्चात् सरस्वती देवी ने काव्य पुरुष नामक पुत्र को जन्म दिया। उत्पन्न होते ही उस काव्य

यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्त्तते ।
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ ॥

तामाम्नायदृष्टचरीमुपलभ्य भाषाविषये छन्दोमुद्रां देवी ससम्मदमङ्कपर्यङ्केनादाय तमुदलापयत् । 'वत्स ! सच्छन्दस्काया गिरः प्रणेतः ! वाङ्मयमातरमपि मातरं मां विजयसे । प्रशस्यतमं चेदमुदाहरन्ति यदुत 'पुत्रात्पराजयो द्वितीयं पुत्रजन्म'

अभ्युत्थानं विधाय सपादोपग्रहं = चरणवन्दनपूर्वकं छन्दस्वतीं = छन्दोवद्धाम्, वाचं= वाणीम्, उदचीचरत् = अजगीदत् । यद्वाचमाह तदुदाहरति—यदेतद्वाङ्मयमिति । हे अम्ब ! = हे मातः ! यदेतत् = पुरोदृश्यमानम्, विश्वं = समस्तम्, वाङ्मयं = शब्दजातम्, अर्थमूर्त्या=पदार्थरूपेण । निवर्तते = विवर्तरूपेण प्रकटी भवति । सः = काव्यपुमान्, अस्मि=अहम् । (अस्मीत्यहमर्थेऽविभक्तिप्रतिरूपकमव्ययमस्ति) तावकौ = त्वदीयौ पादौ = चरणौ, वन्देय = नमस्कुर्याम् । तामाम्नायेति । आम्नायदृष्टचरीं = आम्नेयेषु = वेदेषु दृष्टचरीम् = पूर्वं दृष्टाम् । इदानीं भाषाविषयेऽपि । छन्दोमुद्रां = छन्दसि निबद्धाम्, तां = काव्यपुरुषनिगदिताम्, वाणीम्, उपलभ्य = परिज्ञाय, देवी = दिव्यस्वरूपा सरस्वती, सम्मदेन सहितं ससम्मदं सहर्षं, सानन्दम्, अङ्कः = उत्सङ्ग एव पर्यङ्कः, अङ्कपर्यङ्कः तेन अङ्कपर्यङ्केन = क्रोडेन, आदाय = गृहीत्वा; तं = काव्यपुरुषम्, उदलापयत्=प्रशंस वत्स !=हे पुत्र ! सच्छन्दस्कायाः=छन्दोवद्धायाः, गिरः = वाण्याः, प्रणेतः ! = पद्यबद्धवाणीरचयितः ! वाङ्मयमातरम् = शब्दशास्त्र-जननीम् अपि मां = सरस्वतीम्, विजयसे = पराभवसि, मदपेक्षया उत्कर्षं लभसे । अतिशयेन प्रशस्तं प्रशस्ततमम् = अत्यन्तं प्रशस्तम्, इदमाभणकम्, उदाहरन्ति = कथयन्ति विद्वांसः यदुत = यत्, पुंनाम्नो नरकात् त्रायतेऽसौ पुत्रः तस्मात् पुत्रात् = पुत्रापेक्षया, पराजयः = अपकर्षः, द्वितीयं पुत्रजन्म = द्वितीयपुत्रलाभः । इति=इत्थम्

पुरुष ने निम्नलिखित प्रकार से पादबद्ध छन्दोमयी वाणी में सरस्वती देवी की वन्दना की।

जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण वाङ्मय अर्थ के रूप में परिवर्तित हो जाता है । मैं वही काव्य पुरुष हूँ । हे मातः ! मैं आपके चरणों की वन्दना करता हूँ ।

अपने पुत्र काव्यपुरुष द्वारा, केवल वैदिक सूक्तों में ही प्रयुक्त होने वाली छन्दोमयी वाणी का संस्कृत भाषा में प्रयोग देखकर देवी सरस्वती की प्रसन्नता की सीमा न रही और उन्होंने अपने पुत्र काव्य पुरुष को गोद में उठाकर कहा—वत्स ! यद्यपि मैं सम्पूर्ण वाङ्मय की जननी हूँ, फिर भी तुमने लोक भाषा संस्कृत में छन्दोमयी वाणी के प्रयोग द्वारा मुझे परास्त कर दिया है । यह प्रसन्नता का विषय है कि अपने पुत्र से परास्त होना, द्वितीय पुत्र की उपलब्धि के समान ही आनन्द प्राप्ति का कारण होता है ।

इति। त्वत्तः पूर्वे हि विद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्। त्वदुपज्ञमथातः छन्दस्वद्वचः प्रवर्त्स्यति। अहो श्लाघनीयोऽसि। शब्दार्थौ ते शरीरं, संस्कृतं मुखं, प्राकृतं बाहू, जघनमपभ्रंशः, पैशाचं पादौ, उरो मिश्रम्। समः प्रसन्नो मधुर उदार ओजस्वी चासि। उक्तिचणं ते वचः, रस आत्मा, रोमाणि छन्दांसि, प्रश्नोत्तर-प्रवह्लिकादिकं च वाक्केलिः, अनुप्रासोपमादयश्च त्वामलङ्कुर्वन्ति। भविष्यतोऽर्थ-स्याभिधात्री श्रुतिरपि भवन्तमभिस्तौति—

उल्लाप्य आशिषा सम्भावयति—त्वत इति। ददृशुः = विरचितवन्तः। अर्थात् युष्मत् पूर्वे विद्वांसः = विचक्षणाः, विपश्चितः, गद्यमेव काव्यं विरचितवन्तो न पद्यमयं काव्यम्। त्वदुपज्ञं = त्वया प्रथममाचरितम्। अथातः = त्वदुत्तरम्, छन्दस्वद्वचः = छन्दोनिबद्धं वचनम्। प्रवर्त्स्यति = प्रचलिष्यति। अहो पुत्र! श्लाघनीयः = प्रशंसापात्रम्, असि = वर्तसे।

काव्यपुरुषस्य शरीरं निर्दिशति—शब्दार्थाविति। हे आयुष्मन्! शब्दार्थौ ते = तव, शरीरं = कलेवरम् अस्ति, संस्कृतं = गीर्वाणी, ते मुखम् = आननमस्ति, प्राकृतं = प्राकृतभाषा, ते बाहू स्तः, अपभ्रंशः = अपभ्रंशभाषा, ते जघनं = सक्थि, पैशाचं = पिशाचभाषा, ते पादौ = चरणौ स्तः, मिश्रं = मिश्रभाषा, ते उरः = वक्षस्थलमस्ति। इत्थं संस्कृतमारभ्य मिश्रपर्यन्तं भाषाः काव्यपुरुषस्य तव अङ्ग-प्रत्यङ्गानि सन्ति। तथा चोक्तम्[1]। त्वं यथावसरम् उदासीनेषु समः = समभावः सुहृत्सु = प्रसन्नः = प्रसन्नधीः, कथाप्रसङ्गेषु मधुरः=मृदुभाषी, अर्थिषु उदारः=दाता शत्रुषु=रिपुषु च ओजस्वी=तेजस्वी असि=भविष्यसि। उक्तिचणं = वक्रोक्तिरूपम्, ते वाक्यं वक्रोक्तिरलङ्कारः, रसः आत्मा=आत्मस्थानीयः, छन्दांसि=वृत्तानि, रोमाणि= रोमस्थानीयानि, प्रश्नोत्तरं च प्रह्वेलिका च प्रश्नोत्तरप्रह्वलिके ते आदिर्यस्य तम् प्रश्नोत्तरप्रह्वलिकादिकम् = प्रश्नोत्तरप्रहेलिकादिकम्, वाचां केलि = वाक्केलिः = वाग्विलासः, अनुप्रासश्च उपमा च अनुप्रासोपमे ते आदि येषां ते अनुप्रासोपमादयः=

तुमसे पूर्ववर्ती विद्वानों ने केवल गद्य का ही साक्षात् कार किया है, पद्य का नहीं। केवल यही नहीं बिना किसी के द्वारा मार्ग दर्शन किये ही तुमने छन्दो युक्त रचना प्रस्तुत की है। अतः तुम प्रशंसा के पात्र हो। शब्द और अर्थ तुम्हारा शरीर है, संस्कृत मुख है, प्राकृत बाहु है, अपभ्रंश जंघा है, पैशाची (भाषा) पैर है तथा मिश्रित भाषा तुम्हारा हृदय= वक्षःस्थल है। समता, प्रसन्नता, माधुर्य, औदार्य और तेज तुम्हारे गुण हैं। तुम्हारी वाणी

---

१. संस्कृतं प्राकृतं मिश्रं विकृतं भूतभाषितम्।
काव्यस्याङ्गत्वमायान्ति भाषाश्चैताः पृथक् पृथक्॥

चत्वारि शृङ्गास्त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यानाविवेश ॥

अलङ्काराः, त्वां = काव्यपुरुषम्, अलंकुर्वन्ति = अलंकरिष्यन्ति, भूषयिष्यन्तीति भावः भविष्यतः = भाविनः, अर्थस्य = वस्तुनः, अभिधात्री = प्रतिपादिका । अर्थात् भाविनं पदार्थजातमभिदधती श्रुतिरपि = वेदोऽपि, भवन्तं = त्वां प्रस्तौति स्तुतिमाचरति ।

ऋग्वेदीया चत्वारीति श्रुतिः सायणभाष्ये, निरुक्ते, महाभाष्ये च स्वस्वपक्षपुष्टये विभिन्नतया व्याख्याताऽपि अत्र काव्यपुरुषपरतया व्याख्यायते चत्वारीति । अस्य = काव्यपुरुषस्य चत्वारि = चतुःसंख्योपलक्षिताः वृत्तयः प्रवृत्तयश्च उभे शृङ्गे इव शृङ्गाः = शृङ्गस्थानीयाः सन्ति, त्रयः=त्रिसंख्याकाः अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जनाख्याः, शक्तयः पादाः = पादः इव, पादस्थानीयाः, द्वे शीर्षे = द्वौ प्रकृतिप्रत्ययौ द्वे शिरसी इव, यथा सर्वाङ्गेषु शिरः प्रधानं तथैव शब्दार्थशारीरकस्य काव्यस्यापि तौ प्रकृति-प्रत्ययौ द्वे शिरसी इव भवितुं शक्नुत इति भावः । सप्त = नामाख्यातोपसर्गनिपात-कर्मप्रवचनीयगत्यव्ययानि, हस्तासः हस्ता इव, तादृशकार्यकारित्वात्, त्रिधा बद्धः= माधुर्योजःप्रसादगुणत्रयविशिष्टपदरचनात्मिकाभिः तिसृभिः रीतिभिः क्वचिद्गद्य-प्रकारेण, कुत्रचित्पद्यप्रकारेण, कुत्रचिच्चोभयथा बद्धः = रचितः काव्यपुमान्, यशः-प्रभृतीन् कामान् वर्षतीति वृषभः = सर्वकामदाता महोदेवः = महादेवः काव्या-धिष्ठाता, मर्त्यान् आविवेश = मर्त्येषु प्रादुर्बभूव ।

उत्कृष्ट है । रस तुम्हारी आत्मा है । छन्द तुम्हारे रोयें हैं । प्रश्नोत्तर रूप काव्य तथा प्रहेलिका आदि तुम्हारे वाग्विनोद हैं । अनुप्रास एवं उपमा आदि अलङ्कार तुम्हें अलंकृत करते हैं । भविष्य विषय की सूचना देने वाली श्रुति भी स्तुति करती है । जैसे—

चार-चार संख्या वाली और प्रवृतियाँ जिसकी सींग की तरह हैं । अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना ये तीन वृत्तियाँ जिसके पैर के सदृश हैं । प्रकृति और प्रत्यय जिसके शिर के समान हैं । नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, कर्म, प्रवचनीय, गति और अव्यय जिसके सात हाथों के समान है । जो तीन तरह से गद्य-पद्य और मिश्रित रूप से बँधा हुआ है । ऐसा समस्त कामों की वर्षा करने वाला शब्द कर्मा महादेव मर्त्यों=मनुष्यों में आविर्भूत होगा ।

विशेष—यह मन्त्र ऋग्वेद में आया है, विभिन्न शास्त्राकारों ने अपनी-अपनी दृष्टि से भिन्न-भिन्न अर्थ किया है । वेदभाष्यकार सायण ने इसका अर्थ यज्ञपरक किया है । पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में इसका अर्थ व्याकरण की ओर लगाया है । भरत मुनि ने इसका अर्थ काव्यपरक किया है । भरतमुनि की व्याख्या ही राजशेखर को भी अभिमत है । अतः इसका अर्थ काव्यपरक ही किया गया है ।

तथापि संवृणु प्रगल्भस्य पुंसः कर्म, बालोचितं चेष्टस्व' इति निगद्य निवेश्य चैनमनोकहाश्रयिणि गण्डशैलतलतल्पे स्नातुमभ्रगङ्गां जगाम। तावच्च कुशान् समिधश्च समाहर्त्तुं निःसृतो महामुनिरुशनाः परिवृत्ते पूषण्यूष्मोपप्लुत तमद्राक्षीत्। कस्यायमनाथो बाल इति चिन्तयन् स्वमाश्रमपदमनैषीत्। क्षणादाश्वस्तश्च स सारस्वतेयस्तस्मै छन्दस्वतीं वाचं समचारयत्। अकस्माद्विस्मापयन् स चाभ्युवाच—

लोकव्यवहारसिद्धयर्थं लोकानुरूपमेव वर्तनमावश्यकमिति तमादिदेश— **तथापीति**। यद्यपि त्वं महापुरुषोऽसि तथापि प्रगल्भस्य = धृष्टस्य पुंसः कर्म = चेष्टां संवृणु अवसन्धि, बालोचितं = बालस्वभावसुलभम्, चेष्टस्व = प्रयतस्व, इति = एवम्, निगद्य = उपदिश्य, अनोकहं वृक्षमाश्रयते इति अनोकहाश्रयि तस्मिन् अनोकहाश्रयिणि = भूरुहसमाश्रयणशीले, गण्डशैलस्य = गिरेः च्युतस्य स्थूलोपलस्य तलमेव तल्पम् इति गण्डशैलतलतल्पं तस्मिन् गण्डशैलतलतल्पे निवेश्य = शाययित्वा, स्नातुं = स्नानार्थम्। अभ्रगङ्गाम् = आकाशगङ्गाम्, जगाम = अगच्छत्। यावत् सा स्नातुं गतवती तावच्च तावदेव, तस्मिन् क्षणे कुशान् = दर्भान्, समिधः = इन्धनानि, समाहर्तुम् = आनेतुम्, निःसृतो = बहिः निर्गतः महामुनिः = महर्षिः, उशनाः शुक्राचार्यः पूषणि = सूर्ये परिवृतेऽपरदिगवलम्बिते उष्मणा = घर्मेण उपप्लुतम् = अभितप्तम् सूर्यतापविह्वलं तं = बालं काव्यपुरुषम् अद्राक्षीत् = अपश्यत्। कस्यायम् = कस्य पुरुषस्य एषः, अनाथः = अरक्षितः बालः = शिशुः इत्येवं चिन्तयन् = विचारयन् स्वं = स्वकीयम्, आश्रयपदम् = आश्रयस्थानम् अनैषीत् = आनीतवान्। क्षणात् = मुहूर्तेन, आश्वस्तः = प्रकृतिमापन्नः स्वस्थीभूतः स सारस्वतेयः = सरस्वतीकुमारः तस्मै = उशनसे छन्दस्वतीं वाचं = छन्दोनिबद्धां वाणीं समचारयत् = संचारितवान्। सः = उशनाः, स्वस्मिन् अकस्मात् = सहसा छन्दोमयीवाणीसञ्चारेण

इस प्रकार से अपने पुत्र=काव्य पुरुष की प्रशंसा करने के पश्चात् सरस्वती ने कहा— वत्स! तुम अब अपने प्रौढ़ पुरुषोचित कार्यों को रोक कर बालस्वभावसुलभ चेष्टायें करो। इतना कहने के बाद देवी सरस्वती ने एक वृक्ष की सघन छाया में एक पत्थर की चट्टान को शय्या बनाकर, उस पर अपने बालक को लिटा दिया और आकाश गंगा में स्नान करने के लिए चली गयी। इसी बीच में कुश एवं समिधायें लेने के लिए महामुनि शुक्राचार्य उधर से निकले। उन्होंने, सूर्य की धूप से व्याकुल उस बालक को देखकर सोचा—"यह किसका अनाथ बालक है"। इस प्रकार विचार कर उसे अपने आश्रम पर ले आये। थोड़े समय में स्वस्थ होकर उस सरस्वती पुत्र ने उशना मुनि=शुक्राचार्य के हृदय में छन्दोमयी वाणी को उत्प्रेरित किया। अनन्तर आचार्य शुक्र सभी को आश्चर्यचकित

या दुग्धाऽपि न दुग्धेव कविदोग्धृभिरन्वहम् ।
हृदि नः सन्निधत्तां सा सूक्तिधेनुः सरस्वती ॥

तत्पूर्वकमध्येतॄणां च सुमेधस्त्वमादिदेश । ततः प्रभृतितमुशनसं सन्तः कविरित्याचक्षते । तदुपचाराच्च कवय इति लोकयात्रा । कविशब्दश्च 'कवृवर्णने' इत्यस्य

स्वयं विस्मितः सन् अन्यान् विस्मापयन् = आश्चर्यचकितान् कुर्वन्, अभ्युवाच = प्रोक्तवान् । उशनस उक्तिमाह—

या दुग्धेति । या सूक्तिधेनुः = सूक्तिरूपिणी कामधेनुः, कवय एव दोग्धारः = दोहदक्षाः इति कविदोग्धारः तैः कविदोग्धृभिः, अन्वहं = प्रतिदिनम्, दुग्धापि कृतदोहापि न दुग्धा इव अकृतदोहना इव प्रतिभाति, सा सूक्तीनां = शोभनोक्तीनां धेनुः = सुरधेनुस्वरूपा सरस्वती = शारदा देवी नः = अस्माकं, हृदि = हृदये, सन्निधत्तां सान्निध्यं करोतु, कामधेनुस्वरूपा सरस्वती मद्धृदये प्रविश्य समस्तानर्थान् प्रसूताम् प्रादुर्भावयतात् । अत्र पद्ये सरस्वती कामधेनुत्वेन, कवयो दोग्धृत्वेन, शब्दार्थसमूहो दुग्धत्वेनोत्प्रेक्षितोऽस्तीति भावः ।

तत्पूर्वकमिति । तत्पूर्वकं = उशनसोच्चारितस्य पद्यस्य भूयो भूयः पाठात्, अध्येतॄणां = पाठकानामभ्यासं कुर्वताम् सुमेधस्त्वं = शोभनबुद्धिशालित्वम्, आदिदेश = अनुशशास । य एतत्त्वदुच्चरितछन्दोबद्धं पद्यमध्येष्यते स सुमेधाः कविर्भविष्यतीति भावः । ततः प्रभृति = श्लोकोच्चारणकालात् आरभ्य सन्तः = विद्वांसः तमुशनसं = तं शुक्राचार्यं कविरित्याचक्षते = कविरिति = कथयन्ति । तदुपचारात् = लक्षणावशात् लोकयात्रा = लोकस्थितिः भार्गवादन्यत्र कविशब्दो लक्षणया प्रयुज्यते इति भावः । अर्थात्तादृशपद्यबद्धवर्णनकर्तृषु लोके कविरिति व्यवहारो दृश्यते । प्रसंगागमतं कविशब्दं विवृणोति—कविशब्दश्चेति कवते=सर्वं जानाति, सर्वं वर्णयति, सर्वं गच्छति, सर्वं प्राप्नोति यः स कविरित्यर्थः । कवेः कर्म काव्यं काव्यं कर्म यस्य

करते हुए बोले—

कविता रूपी दुग्ध का निरन्तर दोहन करने वाले कवियों के द्वारा दुही जाने पर भी जिसका दुग्ध कभी क्षीण नहीं होता है, वह सूक्ति धेनु सरस्वती मेरे हृदय में निवास करे ।

उपर्युक्त छन्दोमयी वाणी सुनने के पश्चात् सरस्वती पुत्र ने आशीर्वाद दिया कि जो इसको पहले पढ़ेगा वह बुद्धिमान् हो जायेगा बाद विद्वानों ने उशना को कवि के नाम से सम्बोधित किया । यही कारण है कि अन्य कविगण भी कविता करने के फलस्वरूप कवि के नाम से सुप्रसिद्ध हो गये । 'कवृ वर्णने' इस धातु से काव्य कर्म करने वाले के लिए कवि

धातोः काव्यकर्मणो रूपम् । काव्यैकरूपत्वाच्च सारस्वतेयेऽपि काव्यपुरुष इति भक्त्या प्रयुञ्जते । ततश्च विनिवृता वाग्देवी तत्र पुत्रमपश्यन्ती मध्येहृदयं चक्रन्द । प्रसङ्गागतश्च वाल्मीकिर्मुनिवृषा सप्रश्रयं तमुदन्तमुदाहृत्य भगवत्यै भृगुसूतेराश्रमपदमदर्शयत् । सापि प्रस्नुतपयोधरा पुत्रायाङ्कपालीं ददाना शिरसि च चुम्बन्ती स्वस्तिमता चेतसा प्राचेतसायापि महर्षये निभृतं सच्छन्दांसि वचांसि प्रायच्छत् । अनुप्रेषितश्च स तया निषादनिहतसहचरी क्रौञ्चयुवतिं करुणक्रङ्कारया गिरा क्रन्दतीमुदीक्ष्य शोकवान् श्लोकमुज्जगाद--

---

तत् तस्मात् काव्यकर्मणः हेतोः । सरस्वतेये काव्यशब्दप्रवृत्तिनिमित्तमभिधत्ते—काव्येति । काव्यैकरूपत्वात् काव्येन सह तादात्म्यापन्नत्वात् काव्यभिन्ने सरस्वती पुत्रेऽपि काव्यपुरुष इति भज्यते सेव्यते मुख्यार्थोऽनयेति भक्तिः तया भक्त्या लक्षणया प्रयुञ्जते व्यपदिश्यते । पूर्वतनं प्रसङ्गं दर्शयति—ततश्चेति । ततः = अभ्रगङ्गास्नानात् विनिवृता = प्रत्यागता, वाग्देवी = सरस्वती, तत्र = अनोकहाश्रयिणि गण्डशैलतलतल्पे शयानं पुत्रं = काव्यपुरुषम्, अपश्यन्ती = अनवलोकयन्ती मध्येहृदयं = हृदयस्य मध्ये मध्येहृदयम् । चक्रन्द = करुणापूर्वकं रोदनमकार्षीत् । प्रसंगागतः–किमस्ति कारणमिति हेतोः समागतः । मुनिवृषा = मुनिपुङ्गवः, महर्षिः= वाल्मीकिः सप्रश्रयं = सविनयम् । आश्रयपदम् = आश्रमम्, अदर्शयत् = उपदिष्टवान्, तमुदन्तं = घटितं शुक्रवृत्तम्, उदाहृत्य = कथयित्वा, भृगुसूतेः=भृगुपुत्रस्य भार्गवस्यौशनसः, प्रस्नुतौ पयोधरौ यस्याः सा प्रस्नुतपयोधरा = क्षरद्दुग्धस्तना, सा=सरस्वती पुत्राय काव्यपुरुषाय अङ्कपाली = अङ्कस्य पाली अङ्कपाली तामङ्कपालीम्, आलिङ्गनमुत्सङ्गं वा । स्वातिमता=कल्याणयुक्तेन चेतसा=मनसा दधाना=धारयन्ती शिरसि= मस्तके–चुम्बन्ती=जिघ्रन्ती प्राचेतसाय=वाल्मीकये, निभृतम् = एकान्ते, सच्छन्दांसि काव्यप्रणेतृत्वाशीर्वचनानि । प्रायच्छत् = दत्तवती, अनुप्रेषितः = विसर्जितः । स ऋषिः

शब्द निष्पन्न होता है । काव्य की एक रूपता के कारण सरस्वती के पुत्र काव्य पुरुष के लिए भी लक्षणया कवि शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

स्नान से निवृत्त हो लौटने के बाद सरस्वती ने अपने पुत्र को वहाँ न देखकर छाती पीट-पीट कर जोर से रोने लगी । उसी समय संयोगवश वहाँ पर आये हुए महर्षि वाल्मीकि ने आदरपूर्वक सम्पूर्ण वृत्तान्त सरस्वती को बता दिया तथा भृगुपुत्र=शुक्राचार्य के आश्रम का मार्ग भी दिखा दिया । वह वहाँ जाकर अपने पुत्र को देख बड़ी प्रसन्न हुई और स्नेहवश अपने स्तनों से दुग्ध बहाती हुई, गोद में पुत्र को उठाकर शिर का चुम्बन करने लगी । बाद प्रसन्नचित्ता देवी सरस्वती ने प्रचेतापुत्र महर्षि वाल्मीकि को भी छन्दोमयी

मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥

ततो दिव्यदृष्टिर्देवी तस्मा अपि श्लोकाय वरमदात्, यदुतान्यदनधीयानो यः प्रथममेनमध्येष्यते स सारस्वतः कविः संपत्स्यत इति । स तु महामुनिः प्रवृत्तवचनो

वाल्मीकिः निषादेन = व्याधेन निहतः = घातितः सहचरः = पतिः यस्याः सा तां निषादनिहतसहचरीम् । क्रौञ्चयुवतिं = क्रौञ्चतरुणीम् । क्रौञ्चपक्षि भार्यां, करुणः = दीनः केङ्कारः = क्रन्दनं क्रोशनं यस्यां सा करुणकेङ्कारा तया तया करुणकेङ्कारया, गिरा=वाण्या, क्रन्दन्तीं = रुदतीम् । उदीक्ष्य=अवलोक्य शोकवान् = दयार्द्रहृदयतया शोकयुक्तः श्लोकं = पद्यम् । उज्जगाद = प्रोच्चचार । मा निषादेति । हे निषाद ! = अरे वधिक ! यत् = यस्मात् कारणात् त्वं कामेन मोहितं काममोहितं तत् काम-मोहितं = कामक्रीडानिरतम्, मुग्धम्, क्रौञ्ची च क्रौञ्चश्च क्रौञ्चौ क्रौञ्चयोर्मिथुनं क्रौञ्चमिथुनं तस्मात् क्रौञ्चमिथुनात्=मिथुनीभूतात् क्रौञ्चयुगलात्, विभक्तमेकं = पुरुषं क्रौञ्चम्, अवधीः = हतवान्, तस्मात्त्वमपि शाश्वतीः = निरन्तराः चिरकाल-व्यापिनीः समाः = वर्षाणि आयुः शेषवर्षाणि, प्रतिष्ठां = इहलोके स्वस्त्रीसाहित्येन स्थितिम् । मागमः = माप्नुहि = लभस्व । अर्थात् व्याध ! यथायं त्वया स्त्रीविरहितः कृतः तथा त्वमपि भार्यया हीनो भवेति शशापेति भावः ।

तत इति । ततः=श्लोकोद्गारानन्तरम्, दिव्ये त्रिकालदर्शिनी दृष्टी लोचने यस्याः सा दिव्यदृष्टिः=त्रिकालज्ञा सा सरस्वती देवी तस्मै = वाल्मीकिमुखोद्गतश्लोकाय = वरमदात् = वरं दत्तवती, यदि अन्यत् = किमपि वर्णान्तम्, अनधीयानः = अपठन्, एनं श्लोकम्, प्रथमं = पूर्वम् अध्येष्यते तर्हि स सारस्वतः = सरस्वतीप्राप्तवर-प्रसादः कविः = काव्यरचनानिपुणः काव्यकर्ता, सम्पत्स्यते = भविष्यति, इति =

वाणी का आशीर्वाद प्रदान किया। उस सरस्वती से विदा होकर, महर्षि वाल्मीकि ने देखा कि किसी व्याध ने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मार दिया है और उसकी पत्नी क्रौंची उसके वियोग में करुणक्रन्दन करती हुई विलाप कर रही है। इस करुणमय दृश्य से क्षुब्ध हृदय हुए महर्षि वाल्मीकि के मुख से सहसा 'मा निषाद०' यह श्लोकबद्ध उद्गार निकल पड़ा—'अरे निषाद ! व्याध ! तू कभी भी जीवन में शाश्वत प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकेगा, क्योंकि तू ने काम से मोहित क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक=क्रौञ्च को मार डाला है।'

महर्षि वाल्मीकि की इस करुण काव्यमय उक्ति को भी दिव्य दृष्टि वाली सरस्वती देवी ने अपना आशीर्वचन प्रदान किया कि जो कोई भी व्यक्ति अन्य किसी शास्त्र का अध्ययन न कर सर्वप्रथम इस श्लोक का ही अध्ययन करेगा, वह सारस्वत कवि बन जायेगा।

रामायणमितिहासं समदृभत्; द्वैपायनस्तु श्लोकप्रथमाध्यायी तत्प्रभावेण शतसाहस्त्रीं संहितां भारतम् ।

एकदा तु ब्रह्मर्षिवृन्दारकयोः श्रुतिविवादे दाक्षिण्यवान् देवः स्वयम्भूस्तामिमां निर्णेत्रीमुद्दिदेश । उपश्रुतवृत्तान्तश्च मातरं व्रजन्तीं सोऽनुवव्राज । वत्स ! परमेष्ठिनाऽननुमतस्य ते न ब्रह्मलोकयात्रा निःश्रेयसायेत्यभिदधाना हठान्न्यवर्तयदेनमात्मना

एवम् आशिषमदात् । श्लोकप्रभावं प्रदर्शयति सत्विति । स तादृशश्लोकोद्गाता महामुनिः महर्षिः वाल्मीकिः, प्रवृत्तं समुत्पन्नं वचनं श्लोकरचनात्मकं यस्यासौ प्रवृत्तवचनः = पद्यप्रणयने प्रवृत्तभारतीकः रामायणं = रामायणाख्यम् इतिहासम् = इतिवृत्तग्रन्थम्, समदृभत् = व्यरचयत् । श्लोकं प्रथममधीतेऽसौ श्लोकप्रथमाध्यायी = पूर्वं श्लोकपाठकः, द्वैपायनस्तु = द्विर्गता आपो यस्मिन् तत्द्वीपं द्वीपमेवायनम् = उत्पत्तिस्थानं यस्य स द्वीपायनः द्वीपायन एव द्वैपायनः = कृष्णद्वैपायनो महर्षिः व्यासोऽपि, तस्य प्रभावः तत्प्रभावः तेन तत्प्रभावेण = तच्लोकानुभावेन, पूर्वोक्तश्लोकमहिम्ना शतं सहस्राणि यस्यां सा शतसाहस्री तां शतसाहस्री एकलक्षसंख्यावतीं संहितां भारतं = महाभारतं जग्रन्थ ।

एकदेति । एकदा = कदाचित्, महर्षिश्च वृन्दारकश्चेति महर्षिवृन्दारकौ तयोः महर्षिवृन्दारकयोः = ऋषिदेवतयोः, श्रुतौ विवादः श्रुतिविवादः तस्मिन् श्रुतिविवादे = वेदविषयके कलहे प्रवृत्ते दाक्षिण्यवान् = चातुर्यप्रवीणः, स्वयंभूः = ब्रह्मा, तामिमां = सरस्वतीं निर्णेत्रीं = मध्यस्थाम्, उद्दिदेश = माध्यस्थ्यं सम्पादयितुं सन्दिष्टवान् । उपश्रुतः वृत्तान्तोऽनेनासौ उपश्रुतवृत्तान्तः = आकर्णितसमाचारः, सः = काव्यपुरुषोऽपि व्रजन्तीं = ब्रह्मलोके गच्छन्तीं मातरम् = जननीम् अनुवव्राज = अनुजगाम । वत्स ! पुत्र ! परमेष्ठिना = ब्रह्मणा, अननुमतः = अननु-

---

अर्थात् उसकी वाणी में सरस्वती का साक्षात् निवास होगा। उस महामुनि वाल्मीक ने सरस्वती का वर प्राप्त कर, रामायण नामक इतिहास की रचना की। और उक्त श्लोक को प्रथम अध्ययन करने वाले महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने तो एक लाख श्लोक वाले महाभारत नामक ग्रन्थ की रचना की।

एक बार ब्रह्मर्षियों तथा देवताओं के मध्य वेदविषयक विवाद में उसका निर्णय करने के लिए परम उदार ब्रह्माजी ने सरस्वती देवी को निर्णायक बनाकर बुलाया। तदनुसार जब सरस्वती ब्रह्मलोक जाने लगी तब उसकी ब्रह्मलोकयात्रा का वृत्तान्त सुन कर काव्यपुरुष भी ब्रह्मलोक जाती हुई माता का अनुगमन प्रारम्भ किया, परन्तु सरस्वती ने कहा—"वत्स ! ब्रह्मा जी के द्वारा अनुमति न प्राप्त होने के कारण तुम्हारी ब्रह्मलोकयात्रा

तु प्रववृते। ततः स काव्यपुरुषो रुषा निश्चक्राम। प्रियं मित्रमस्य च कुमारः साक्रन्दं रुदन्नभ्यधीयत गौर्या तात ! तूष्णीमास्स्व साऽहमेषा निषेधामीति निगदन्ती समचिन्तयत्। प्रायः प्राणभृतां प्रेमाणमन्तरेण नान्यद् बन्धनमस्ति, तदेतस्य वशीकरणं कामपि स्त्रियं सृजामीति विचिन्तयन्ती साहित्यविद्यावधूमुदपादयदादिशच्चैनामेष ते रुषा धर्मपतिः पुरः प्रतिष्ठते तदनुवर्त्तस्वैनं निवर्त्तय च। भवन्तोऽपि

मोदितः। ब्रह्मलोकयात्रा = ब्रह्मलोकगमनम्। निःश्रेयसाय = कल्याणाय न = नहि भवित्रीति अभिदधाना = ब्रुवाणा, हठात् = बलात्, न्यवतर्तयत् = न्यवारयत्। तु = किन्तु आत्मना प्रववृते = स्वयं ब्रह्मलोकं जगाम। ततः=तदनन्तरम्, रुषा = क्रोधेन, निश्चक्राम = गृहान्निर्गतः। अस्य प्रियं मित्रं कुमारः=गौरीपुत्रः कार्तिकेयः साक्रन्दं = सफूत्कारम् रुदन् गौर्या = पार्वत्या अभ्यधीयत = उक्तः, तात ! वत्सः ! तूष्णीमास्स्व = जोषं तिष्ठ, साहमेषा = अहमिदानीं, निषेधामि = वारयामि इति निगदन्ती = ब्रुवन्ती। समचिन्तयत् = अध्यासीत्। तच्चिन्तितं प्रकाशयति–प्राय इति। प्रायः प्राणभृतां = प्राणिनाम्, प्रेमाणमन्तेरण = स्नेहं विना अन्यद् बन्धनं नास्ति। अतोऽस्य वशीकरणं सृजामि = रचयामि इति एवं विचिन्तयन्ती कामपि स्त्रियं = विलक्षणसौन्दर्यशालिनीं रमणीं साहित्यविद्यैव वधूरिति साहित्यविद्यावधूः तां साहित्यविद्यावधूम्। सृजामि = रचयामि इति = एवं विचिन्तयन्ती उदपादयत् = असृजत्। एनां = वधूम्। आदिशत् = आज्ञापयत् च, एष ते = तव धर्मपतिः = धर्मस्वामी पुरः = अग्रे, प्रतिष्ठते, तिष्ठति यद्वा पुरः स्वस्थानात् प्रतिष्ठते – रुषा पलायते। तत् तस्मात् अनुवर्तस्व = अनुसर, निर्वतय वा एनम् = अमुम् इत्येव काव्यविद्यावधूमादिश्य सा गौरी मुनीन् आदिशति—भवन्तोऽपीति। हे मुनयः काव्यविद्यास्नातकाः = काव्यविधामध्येतुकामाः भवन्तः = यूयमपि एतयोः = वधू-

---

कल्याणकारी नहीं होगी" यह कहकर उसे जबर्दस्ती वापस कर दिया और स्वयं ब्रह्मलो[illegible] चली गयी। तब वह काव्यपुरुष रुष्ट होकर अपने स्थान से जाने लगा। इस घटना [illegible] उसका प्रिय मित्र कुमार (पार्वतीपुत्र, कार्तिकेय) जोर-जोर से रोने लगा। इसपर कुम[illegible] की माता गौरी ने अपने पुत्र को चुप करते हुए कहा—बेटा ! मैं इसे रोकती हूँ। यह [illegible] कर वह सोचने लगी।

प्रायः प्रेम के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा बन्धन नहीं है, जिसके द्वारा प्राणियों [illegible] रोका जा सके। 'अतः इस काव्य पुरुष को वश में करने के लिए मैं किसी स्त्री [illegible] रचना करूँ' यह सोचती हुई पार्वती देवी ने साहित्यविद्यावधू को उत्पन्न करके कहा [illegible] यह सामने तुम्हारा धर्मपति रुष्ट होकर जा रहा है इसका अनुगमन करते हुए वापस करो

हन्त ! मुनयः ! काव्यविद्यास्नातकाश्चरितमेतयोः स्तुध्वम्, एतद्धि वः काव्यसर्वस्वं भविष्यतीत्यभिधाय भगवती भवानी जोषमासिष्ट। तेऽपि तथा कर्त्तुमवतस्थिरे।

अथ सर्वे प्रथमं प्राचीं दिशं शिश्रियुर्यत्राङ्गवङ्गसुह्मब्रह्मपुण्ड्राद्या जनपदाः, तत्राभियुञ्जाना तमौमेयी यं वेषं यथेष्टमसेविष्ट, स तत्रत्याभिः स्त्रीभिरन्वक्रियत। सा प्रवृत्तिरौड्रमागधी। तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

वरयोः, चरितं स्तुध्वं = नुवत, एतत् = स्तवनं हि नूनं वः = युष्माकम्, काव्यसर्वस्वं भविष्यति। अभिधाय = उक्त्वा भवानी = भगवती पार्वती जोषं = तूष्णीम् आसिष्ट = तस्थौ, विरराम। तेऽपि = मुनयोऽपि तथा कर्तुं = अनुगन्तुं, निर्वर्तयितुं स्तोतुं च अवतस्थिरे = व्यवसिष्यिरे, उद्यता बभूवुरित्यर्थः।

रुष्टः काव्यपुरुषो यत्र यत्र बभ्राम, तत्र तत्रापि तं प्रसादयितुं साहित्यविद्या-वधूः काव्यविद्यास्नातकाश्च अन्वगच्छन्निति दर्शयति—अथेति। अथ = अनन्तरं सर्वे ते प्रथमं = प्राक्, प्राचीं = पूर्वां दिशम्, शिश्रियुः = आश्रितवन्तः। तं = काव्य-पुरुषम्। अभियुञ्जानाः = वशीकर्तुं कामयमानाः। औमेयी = उमायाः (गौर्याः) अपत्यं स्त्रीः औमेयी=उमापुत्री साहित्यविद्यावधूः। यं वेषं = यन्नेपथ्यम्। यथेष्टं = स्वेच्छया। असेविष्ट = स्वीचकार। सः = वेषः। तत्रत्याभिः = तद्दिग्भवाभिः, स्त्रीभिः = नारीभिः। अन्वक्रियत = अनुकृतः। सा = तादृशवेषानुकरणप्रवृत्तिः। औड्रमागधी = औड्र[1]मागधीनाम्ना प्रसिद्धा जाता। तां = औड्रमागधीप्रवृत्तिम्। अभितुष्टुवुः = नुनुवुः।

इसके बाद मुनिगणों को भी यही आदेश दिया कि हे मुनियों ! आप लोग भी काव्यविद्या के स्नातक हो। अतः इन दोनों के चरित की स्तुति करो, क्योंकि यही आप लोगों के काव्य का सर्वस्व होगा। यह कहकर पार्वती जी चुप हो गयीं। उन मुनिगणों ने भी पार्वती के आदेशानुसार उनका अनुगमन आरम्भ कर दिया।

इसके अनन्तर उन सभी लोगों ने सर्वप्रथम पूर्व दिशा के देशों में प्रस्थान किया। जहाँ अंग, बंग, सुह्म तथा पुण्ड्र जनपद विद्यमान हैं। उमा से प्रसूत उस साहित्यविद्यावधू ने सरस्वतीपुत्र काव्यपुरुष को अनुरक्त करने के लिए जिस-जिस वेश को धारण किया उस-उस वेश का अनुकरण वहाँ की स्त्रियों ने भी किया। अतः उस अनुकरणात्मक प्रवृत्ति का नाम औड्रमागधी प्रसिद्ध हुआ। स्त्रियों की इस अनुकरण वृत्ति की प्रशंसा उन सभी मुनियों ने की—

---

१. अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गाश्च वत्साश्चैवौड्रमागधाः।
अन्येऽपि देशाः प्राच्यां ये पुराणे संप्रकीर्तिताः।
तेषु प्रयुज्यते त्वेषा प्रवृत्तिश्चोड्रमागधी॥

आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहारः सीमन्तचुम्बिसिचयः स्फुटबाहुमूलः ।
दूर्वाप्रकाण्डरुचिरास्वगुरूपभोगाद् गौडाङ्गनासु चिरमेष चकास्तु वेषः ॥

यदृच्छयाऽपि यादृङ्नेपथ्यः स सारस्वतेय आसीत् तद्वेषाश्च पुरुषा बभूवुः । साऽपि सैव प्रवृत्तिः । यदपरं नृत्तवाद्यादिकमेषा चक्रे सा भारती वृत्तिः । तां ते मुनय

मुनिजनस्तुतमाह—आर्द्रेति—सूत्रयुक्तः = सूत्रमुम्फितो हारः सूत्रहारः आर्द्रार्द्रमत्यर्थमार्द्रं चन्दनं = विलेपनं ययोः तौ आर्द्रार्द्रचन्दनौ तौ च तौ कुचौ इति आर्द्रार्द्रचन्दनकुचौ तयोः अर्पितः सूत्रहारः यस्मिन् स आर्द्रार्द्रचन्दनकुचार्पितसूत्रहारः = सान्द्रमलयजविलेपनधवलितस्तनमण्डलकलितमुक्तामालः । सीमन्तं चुम्बतीति सीमन्तचुम्बि सीमन्तचुम्बि = शिरोऽग्रभागस्पार्शि सिचयं = अंशुकं यस्मिन् स सीमन्तचुम्बिसिचयः । स्फुटं बाह्वोः = भूजयोः मूलं यत्रासौ स्फुटबाहुमूलः = दृश्यमानभुजयुगलमूलः । अगुरुणः, उपभोगः अगुरूभोगः तस्मात् अगरूपभोगात् = राजार्हस्य निर्वेशात्, अगुरुपलेपनात् । प्रशस्ता दूर्वा दूर्वाप्रकाण्डाः दुर्वाप्रकाण्डवद्रुचिरा दूर्वाप्रकाण्डरुचिराः तासु दूर्वाप्रकाण्डरुचिरासु = दूर्वाङ्कुरमनोरासु, श्यामासु, दूर्वाङ्कुरतन्वीषु । गौडानामङ्गना गौडाङ्गनाः तासु गौडाङ्गनासु = वङ्गप्रदेशललनासु । एषः = अयम्, आर्द्रार्द्रेतिवर्ण्यमानो वेषः = नेपथ्यरचना, चिरं = बहुकालम् चकास्तु, शोभताम्, विलसतु ।

पुरुषाणामपि वेषविषयमाह—यदृच्छयेति । यदृच्छया = स्वेच्छया । यादृग्नेपथ्यः = यथा वेषादिभिरलङ्कृतः स सारस्वतेयः = सरस्वतीपुत्रः, आसीत् = बभूव तद्वेषाः = काव्यपुरुषानुकूलवेषाः बभुवुः । सापि = पुरुषाणां प्रवृत्तिरपि, सर्वाङ्गभारधी प्रवृत्तिः । एषा = साहित्यवधूः । यदपरं नृत्यवाद्यादिकं चक्रे सा भारती वृत्तिः = तदनुरञ्जनाय औमेयीकृता नृत्यवाद्यादयः भारतीवृत्ति[1] नाम्ना प्रसिद्धा ।

गीले चन्दन से सिक्त जिनके स्तनों पर सूत्रहार = मंगलसूत्र सुशोभित हो रहा है, जिनकी मांग (सीमान्त) का स्पर्श वस्त्र कर रहा है तथा जिनकी बाहुओं का मूल भाग = काँख दिखायी पड़ रहा है, अगुरु के उपयोग से सुवासित दूब के अंकुर के समान सुन्दर गौड़ देश = बंगाल की ललानाओं का यह सुन्दर वेश चिरकाल सुशोभित होता रहे ।

सारस्वतेय ने भी स्वेच्छापूर्वक जिस प्रकार के वेश को धारण किया वही वेश वहाँ के पुरुषों ने भी अपना लिया । इस प्रवृत्ति का भी नाम वही औड्रमागधी पड़ा । इसके अनन्तर जिस प्रकार के नृत्य, गीत, वाद्य आदि का प्रयोग औमेयी = उमापुत्री, साहित्यविद्यावधू ने

---

१. या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्प्रयुक्ता ।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता सा भारती नाम भवेत्तु वृत्तिः ॥

इति समानं पूर्वेण । तथाविधकल्पयापि यदा यदवशंवदीकृतः समासवदनुप्रासवद्योगवृत्तिपरम्परातद्गर्भं (वाक्यं) जगाद सा गौडीया रीतिः । तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण । वृत्तिरीतिस्वरूपं यथावसरं वक्ष्यामः ।

ततश्च स पञ्चालान् प्रत्युच्चचाल । यत्र पाञ्चालशूरसेनहस्तिनापुरकाश्मीरवाहीकबाह्लीकबाह्लवेयादयो जनपदाः । तत्राऽभियुञ्जाना तमौमेयीति समानं पूर्वेण । सा पाञ्चालमध्यमा प्रवृत्तिः । तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

तां = वृत्तिं ते मुनयोऽपि पूर्ववत् तुष्टुवुः । तथाविधकल्पया = तादृशवेषया आर्द्रार्द्रं चन्द्रनेत्यादि पूर्वोक्तगौडाङ्गनावेषया । तया = साहित्यत्यविद्यावध्वा । अवशंवदीकृतः = न वशीकृतः अर्थात् सा औमेयी काव्यपुरुषं वशे कर्तुं न प्राभवत् । योगवृत्तेः परम्परा योगवृत्तिपरम्परा सा गर्भे यस्मिन् तत् योगवृत्तिपरम्परागर्भं=अभिधाप्रधानं वाक्यं जगाद = उवाच सा गौडीया रीतिः जाता । तथा च समासबहुला, अनुप्रासप्रधाना, अभिधावृत्तिपरा परम्परानुरूपा वृत्तिः, गौडीया वृत्तिः यद्वा वृत्तेः शक्तेः परम्परा = अनादिप्रवाहः यस्यां सा वृत्तिपरम्परा = रुढिः, सः योगो गर्भे = वृत्तौ यस्य स तद्गर्भः योगश्च वृत्तिपरम्परा च तद्गर्भश्चेति योगवृत्तिपरम्परातद्गर्भाः ते यस्मिन् वाक्ये तत् योगवृत्तिपरम्पारम्परागर्भम् अभिधाप्रधानं वाक्यं जगाद सा गौडीया वृत्तिः । तां = गौडीयां वृत्तिं ते मुनयोऽपि तुष्टुवुः । वृत्तेः रीतेश्च स्वरूपं यथावसरं = यथाप्रसङ्गं वक्ष्यामः = स्वयमेव ग्रन्थकर्त्रा निरूपयिष्यते ।

एवं पूर्वस्या दिशः भ्रमणं निर्दिश्योत्तरदिग्भ्रमणमुपक्रमते—

ततश्चेति । ततः = प्राचीदिशो भ्रमणानन्तरम्, स = काव्यपुरुषः पाञ्चालान् = उत्तदिग्वर्तिनो देशान् प्रति उच्चचाल = गतवान् जानपदाः = प्रदेशाः ।

किया, उसी का नाम भारती वृत्ति पड़ा । पहले की तरह ही मुनियों ने उसकी स्तुति की । साहित्यविद्यावधू के द्वारा इस प्रकार की वेश-भूषा अपनाने पर भी जब काव्यपुरुष वश में नहीं आया तो उसने समासों से परिपूर्ण अस्पष्ट अनुप्रासयुक्त योगवृत्ति तथा परम्परागत गर्भित वाक्यों का उच्चारण किया यह गौड़ी रीति के नाम से प्रसिद्ध हुई । मुनियों ने उसकी पूर्ववत् प्रशंसा की, वृत्ति एवं रीति का वर्णन हम आगे यथाप्रसंग करेंगे ।

इसके पश्चात् वह काव्य पुरुष पाञ्चालदेश की ओर चला, जहाँ कि शूरसेन, हस्तिनापुर, काश्मीर, वाहीक, बाह्लीक तथा बाह्लवेय आदि जनपद हैं । वहाँ भी काव्यपुरुष को आकृष्ट करने के उद्देश्य से उमापुत्री=साहित्यविद्यावधू ने जिस-जिस रूपसज्जा को धारण किया । उसी का अनुगमन उन जनपदों की स्त्रियों ने भी किया । यह प्रवृत्ति पाञ्चालमध्यमा के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई । मुनियों ने भी इस रूप की प्रशंसा की ।

ताटङ्क-वल्गन-तरङ्गित-गण्डलेखमानाभिलम्बि-दर-दोलित-तार-हारम् ।
आश्रोणिगुल्फपरिमण्डलितान्तरीयं वेषं नमस्यत महोदयसुन्दरीणाम् ॥

किञ्चिदार्द्रमना यन्नेपथ्यः स सारस्वतेय आसीदिति समानं पूर्वेण । साऽपि सैवेति समानं पूर्वेण । यदीषन्नृत्तगीतवाद्यविलासादिकमेषा दर्शयांबभूव सा सात्वती वृत्तिः । आविद्धगतिमत्त्वात्सा चारभटी । तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण ।

[1]पाञ्चालमध्यमां प्रवृत्तिमाह—ताटङ्केति—ताटङ्कस्य = कर्णभूषणस्य वल्गनेन = दोलायितेन तरङ्गिता = तरलीकृता गण्डलेखा = कपोलभित्तिः यस्मिन् स तम् ताटङ्कवल्गनतरङ्गितगण्डलेखम् । नाभिमभिव्याप्य आनाभि, आनाभि = नाभि-पर्यन्तं लम्बते तच्छील: आनाभिलम्बी, आनाभिलम्बी = लम्बायमानः दरं = स्वल्पं यथा स्यात्तथा दोलितः = ईषदान्दोलितः = चञ्चलः तारः = शुभ्रः हारो यत्र स आनाभिलम्बिदरदोलिततारहारः । श्रोणिश्च गुल्फश्च श्रोणिगुल्फौ तौ अभिव्याप्येति आश्रोणिगुल्फं, आश्रोणिगुल्फं परिमण्डितं = परितः सुशोभितं, अन्तरीयं = अधो-वस्त्रं यस्मिन् स तम् आश्रोणिगुल्फपरिमण्डितोत्तरीयम्, महोदयाः = कान्यकुब्जाः तेषां सुन्दरीणां = रमणीनां वेषं = नेपथ्यं नमस्यत = प्रणमत ।

श्रोणिगुल्फयोराच्छादकम् अधोवस्त्रं हि अन्तरीयमुच्यते यथा—

नाभौ धृतं च यद्वस्त्रमाच्छादयति जानुनी ।
अन्तरीयं प्रशस्तं तदाच्छन्नमुभयोस्तयोः ॥

तादृशवेषमाहात्म्यमाह—किञ्चिदिति । किञ्चित्—ईषत्, आर्द्रितं—सरसीकृतं मनः चित्तं यस्यासौ किञ्चिदार्द्रितमनाः — प्रागुदासीनोऽपि काव्यपुरुषः साम्प्रतं स्तोक-मनुकूलभावं दधाविति भावः । ईषत् — किञ्चित् नृत्तं गीतं वाद्यं विलास आदिर्यस्मिन् कर्मणि तत् ईषन्नृत्तगीतवाद्यविलासादिकम् । एषा=साहित्यविद्यावधूः दर्शयामास सा

कर्णकुण्डलों के हिलने से जिनकी नाभि तक चंचल हार लटकता रहता है, जघन प्रदेश से लेकर घुटनों तक जिनका अधोवस्त्र लटकता रहता है, महोदय की सुन्दरियों का यह मनोरम वेश नमस्कार के योग्य है ।

किञ्चित्-अनुरक्त चित्त होकर सारस्वतेय जिस वेश को धारण किया उसी का अनुकरण उस देश के पुरुषों ने भी किया, अतः उसकी इस प्रवृत्ति का नाम पाञ्चालमध्यमा प्रवृत्ति पड़ा । यहाँ पर साहित्यविद्यावधू ने जिस नृत्य, गीत, हावभाव, वाद्य, विलास आदि का प्रदर्शन किया, उसका नाम सात्वतीवृत्ति पड़ा । इसमें गति का अवरोध होने के कारण

---

१. पाञ्चालाः शौरसेनाश्च काश्मीरा हस्तिनापुराः ।
हिमवत्संश्रिता ये तु गङ्गायाश्चोत्तरां दिशम् ॥
ये श्रिता वै जनपदाः तेषु पाञ्चालमध्यमा ।

तथाविधकल्पयापि तया यदीषद्वशंवदीकृत ईषदसमासमीषदनुप्रासमुपचारगर्भञ्च (वाक्यं) जगाद सा पाञ्चाली रीतिः । तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण ।

ततः सोऽवन्तीन्प्रत्युच्चचाल । यत्रावन्तीवैदिशसुराष्ट्रमालवार्बुदभृगुकच्छादयो जनपदाः । तत्राभियुञ्जाना तमौमेयीति समानं पूर्वेण । सा प्रवृत्तिरावन्ती ।

---

[1]सात्त्वतीवृत्तिः । सैषा सात्वती एवा[2]रभटीप्रोच्यते । तत्र हेतुमाह—आविद्धेति । अविद्धा कुटिला गतिः विद्यत्ते यस्याः सा अविद्धगतिः सा अस्ति अस्मिन्नि आविद्धगतिमत् तस्य भावः आविद्धगतिमत्त्वं तस्मात् आविद्धगतिमत्वात् तादृश-नेपथ्ययाऽपि तद्वेषवशंवदीकृतः काव्यपुरुषः, ईषदसमासम् = असमस्तं ईषदनुप्रासम्= अल्पानुप्रासिकं लाक्षणिकं वाक्यं जगाद सा पाञ्चाली रीतिः अर्थात् साहित्यविद्या-वधूवशीभूतेन काव्यपुरुषेण यत् किञ्चित् समासरहितं अल्पानुप्रासिकमौपचारिकं च प्रयुक्तं तदेव पाञ्चलीरीतिर्निगद्यते ।

तत इति । ततः=उत्तरदिगनुशीलनानन्तरम् स काव्यपुरुषः अवन्तीन्=अवन्ति-नाम्ना प्रसिद्धान् प्रदेशान् उच्चचाल, यत्र आवन्त्यादयो जानपदा वर्तन्ते । तत्रत्या प्रवृतिः [3]आवन्तीनाम्ना प्रोच्यते सा च प्रवृत्तिः पाञ्चालमध्यमायाः दाक्षिणात्यायाश्च प्रवृत्तेः मध्ये प्रवर्तते । अतोऽन्तरालवर्तित्वात् सात्वतीकौशिक्यौ तत्रावन्तिषु द्वे वृत्ती व्यवह्रियेते । [4]तथा च उत्तरप्रदेशीयायाः सात्वत्या दाक्षिणात्यायाश्च कौशि-

---

इसको आरभटी भी कहते हैं। मुनियों ने इसकी पूर्ववत् प्रशंसा की। इस प्रकार वेश-भेषादि का प्रदर्शन करने वाली औमेयी के द्वारा वह सारस्वतेय कुछ-कुछ वशीभूत हुआ। अतः उसने अल्प समास युक्त, तथा उपचारयुक्त वाक्यों का उच्चारण किया। अतः वह पाञ्चाली रीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। मुनियों ने इसकी पूर्ववत् स्तुति की।

इसके अनन्तर सारस्वतेय ने अवन्तिदेश की ओर प्रस्थान किया। जहाँ पर अवन्ति, वैदिश, सौराष्ट्र, मालव, अर्बुद, भृगुकच्छ आदि जनपद हैं, वहाँ पर काव्य पुरुष को अपनी ओर आकृष्ट करने हेतु जिस वेश को, आमेयी ने धारण किया उसे आवन्ती प्रवृत्ति कहते हैं।

---

१. या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।
हर्षोत्कटा संवृतशोकभावा सा सात्वती नाम भवेत्तु वृत्तिः॥

२. प्रभावयातप्लुतलङ्घितानि चान्यानि मायाकृतमिन्द्रजालम्।
चित्राणि युक्तानि च यत्र नित्यं तां तादृशीमारभटीं वदन्ति॥

३. आवन्तिका वैदेशिका सौराष्ट्रा मालवास्तथा।
कुर्वन्त्यावन्तिकीमेते प्रवृत्तिं नित्यमेव तु॥

४. सातवतीं कौशिकीं चैव वृत्तिमेषां समाश्रितः।
भवेत् प्रयोगोः नान्यत्र सर्वैः कार्यः प्रयोक्तृभिः॥

पाञ्चालमध्यमादाक्षिणात्ययोरन्तरचारिणी हि सा। अत एव सात्वतीकैशिक्यौ तत्र वृत्ती। तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः—

पाञ्चालनेपथ्यविधिर्नराणां स्त्रीणां पुनर्नन्दतु दाक्षिणात्यः।
यज्जल्पितं यच्चरितादिकं तदन्योन्यसंभिन्नमवन्तिदेशे॥

ततश्च स दक्षिणां दिशमाससाद। यत्र मलयमेकलपालमंजराः पार्वताः। कुन्तलकेरलमहाराष्ट्रगाङ्गादयो जनपदाः। तत्राभियुञ्जाना तमौमेयीति, समानं पूर्वेण। सा दाक्षिणात्या प्रवृत्तिः। तां ते मुनयोऽभितुष्टुवुः।

क्या वृत्तेः परस्परं संमिश्रत्वात् चरितेषु जल्पितेषु च मिश्रणं दृश्यते। अत एव केचन उत्तरदाक्षिणात्ययोः पाञ्चालीवैदर्भीरीत्योः अन्तरर्वातिनीरीति र्लाटीति प्रोच्यते। तथाहि—'लाटी तुरीतिर्वैदर्भीपाञ्चाल्योरन्तरे स्थिता'। मुनीनामभिष्टुतमाह—पाञ्चालेति नराणां = पुरुषाणाम्, पाञ्चालनेपथ्यविधिः = पाञ्चालदेशोद्भववेशरचनाप्रकारः। पुनः = तथा, स्त्रीणां = नारीणाम्, दाक्षिणात्यः = दक्षिणदिग्भवः नेपथ्यविधिः, नन्दतु = प्रीतिप्रदो भवतु। अत्रावन्तिदेशे यत् चरितादिकं व्यवहारादिकं = यच्च जल्पितं = भाषणम्, वर्तते तत् = सर्वम्, अन्योन्यसंमिश्रम्, उभयोर्मिलितम् अस्ति। उत्तरदेशीयायाः सात्वत्याः दक्षिणदिग्भवायाः कौशिक्याश्च वृतेः संमिश्रणात् चरितादिष्वपि संमिश्रणत्वं युक्तमेव। अतः तदुत्कृष्टत्वात् पाञ्चाले पुरुषाणां दक्षिणे नारीणाञ्च वेशविन्यासादिकमाकर्षकं भवतीति भावः।

ततश्चेति। ततः पश्चिमदिगनुसरणानन्तरं स = काव्यपुरुषः दक्षिणां दिशमाससाद = आसदितवान्। यत्र = यस्यां दक्षिणदिशि, अभियुञ्जानाः = काव्यपुरुषानुसरणपराः।

पाञ्चाल तथा दाक्षिणात्य के मध्य की यह वृत्ति है। यही कारण है कि वहाँ सात्वती तथा कौशकी वृत्ति पायी जाती है, उस वृत्ति की मुनियों ने पूर्ववत् प्रशंसा की।

पाञ्चाल देश के पुरुषों का तथा दक्षिण देश की स्त्रियों की वेश-भूषा तथा व्यवहार, प्रशंसा करने योग्य है, परन्तु उपर्युक्त दोनों देशों की भाषागत तथा व्यवहार गत समिश्रण अवन्ति देश में पाया जाता है।

इसके बाद वह काव्यपुरुष दक्षिण दिशा की ओर गया। जहाँ मलय, मेकल, पाल, मंजर आदि पर्वत हैं तथा कुन्तल, केरल, महाराष्ट्र, गाङ्ग, कलिंग आदि जनपद हैं। वहाँ साहित्य विद्यावधू ने उसको आकृष्ट करने के लिए विविध प्रकार के वेश धारण किये। इसको दाक्षिणात्य प्रवृत्ति कहते हैं। यहाँ भी मुनियों ने पूर्ववत् प्रशंसा की।

आमूलतो बलितकुन्तलचारुचूडश्चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः ।
कक्षानिवेशनिबिडीकृतनीविरेष वेषश्चिरं जयति केरलकामिनीनाम् ॥

तामनुरक्तमनाः स यन्नेपथ्यः सारस्वतेय आसीदिति समानं पूर्वेण । साऽपि सैवेति समानं पूर्वेण । यद्विचित्रनृत्तगीतबाद्यविलासादिकमेवाविर्भावयामास सा कैशिकी वृत्तिः । तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण । यदत्यर्थं च स तया वशंवदीकृतः

मुनिभिरभिष्टुतां दाक्षिणात्यप्रवृत्तिप्रशंसामाह—**आमूलत इति ।** आमूलतः =मूलादेव, वलितैः =भुग्नैः कुन्तलैः =केशैः चारुः =मनोहरा चूडा =धम्मिलो यस्मिन् सः वलितकुन्तलचारुचूडः, चूर्णं =वासयोगः तेन युक्ता अलकाः चूर्णालकाः कुञ्चितकेशाः तेषां प्रचयः =समूहः तेन लाञ्छितः सुशोभितः भालभागः =ललाट-प्रदेशः यस्मिन् वेषे स चूर्णालकप्रचयलाञ्छितभालभागः । कक्षा =कटिवस्त्रं तस्या निवेशेन =बन्धनेन निविडीकृता नीविः =जघनवस्त्रग्रन्थिः यस्मिन् असौ कक्षानिवेशनिविडीकृतनीविः । एषः =अयं केरलकामिनीनां =केरलवनितानाम्, वेषः =नेपथ्यम्, चिरं =चिरकालम्, जयति =सर्वोत्कर्षेण वर्तते । अत्र जयतीत्य-नेन केरलकामिनीनां वेषस्य सर्वोत्कृष्टत्वं काव्यपुरुषस्य सर्वापेक्ष्यानुरक्तत्वं च ध्वन्यते इति भावः ।

तामनुरक्तमना इति । तां =साहित्यविद्यावधूम्, अनुरक्तमनाः =आसक्तचेताः, सः =सरस्वतीपुत्रः =काव्यपुरुषः, यन्नेपथ्यः =यथावस्त्रादिसम्पन्नः आसीत्, तस्यानुकरणं तत्रत्याः पुरुषा अपि अकुर्वन्निति भावः । सा साहित्यविद्यावधूरपि यद् विचित्रं नृत्तं गीतं वाद्यं विलासादिकं आविर्भावयामास =दर्शयामास सा कौशिकी[1] वृत्तिः । यच्च तया=साहित्यविद्यावध्वा अत्यर्थं वशंवदीकृतः=अनुरक्ती-

---

मूल से ही घुँघराले हो जाने वाले केशों के कारण जिनकी चूडा (जूड़ा) मनोरम प्रतीत होती है, सुगन्धादि के प्रयोग से जिनकी केशराशि ललाट, सौन्दर्य से परिपूर्ण हो जाता है, कटिप्रदेश में साड़ी बांधने के कारण जिनकी नीवि = गाँठ छिप जाती हैं, ऐसे सुन्दर रूप-राशि से युक्त केरली स्त्रियों का सौन्दर्य चिरकाल तक प्रशंसनीय बना रहे ।

उस साहित्य विद्यावधू औमेयी के प्रति आसक्त मन वाले काव्यपुरुष ने जिस कौशादिक को धारण किया, उसका अनुगमन उन-उन देशों के पुरुषों ने भी किया । उसी के नाम वृत्ति भी प्रसिद्ध हुई । जिस विचित्र नृत्य, गीत, वाद्य तथा भाव-भंगिमाओं द्वारा औमेयी ने काव्य

---

१. या श्लक्ष्णनेपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंयुक्ता बहुनृत्तगीता ।
कामोपभोगप्रभवोपचारा तां कौशिकीं वृत्तिमुदाहरन्ति ॥

स्थानानुप्रासवदसमासं योगवृत्तिगर्भं च (वाक्यं) जगाद सा वैदर्भी रीतिः। तां ते मुनय इति समानं पूर्वेण।

तत्र वेषविन्यासक्रमः प्रवृत्तिः, विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः, वचनविन्यासक्रमो रीतिः। 'चतुष्टयी गतिर्वृत्तीनां प्रवृत्तीनां च देशानां पुनरानन्त्यं तत्कथमिव कार्त्स्न्येन परिग्रहः' इत्याचार्याः। अनन्तानपि हि देशांश्चतुर्धैवाकल्प्य कल्पयन्ति 'चक्रवर्तिक्षेत्रं

कृतः, वशीविहितः सः = काव्यपुरुषः स्थानानुप्रासवत् = योग्यस्थानकृतानुप्रासम्। असमासं = क्वचिदल्पसमासयुक्तं योगवृत्तिगर्भं = अभिधामूलकं व्यङ्ग्यमयं वाक्यं जगाद = उक्तवान् सा वैदर्भी रीतिः।

पूर्वं प्रतिज्ञातं प्रवृत्यादिलक्षणं निरुपयति--तत्रेति। वेषस्य विन्यासः=निवेशः वेषविन्यासः वेषविन्यासस्य क्रमः यत्रासौ वेषविन्यासक्रमः, प्रवृत्तिः = प्रवृत्तिरिति-कथ्यते। विलासस्य विन्यासः विलासविन्यासः तस्य क्रमः यत्रासौ विलासविन्यास-क्रमः, वृत्तिः = वृत्तिरित्युच्यते, वचनस्य विन्यासः वचनविन्यासः वचनविन्यसास्य क्रमः वचनविन्यासक्रमः यत्र सा रीतिः रीतिरिति प्रोच्यते। तदुक्तं विष्णुपुराणे।[1]

वृत्यादीनां चतुष्टयीत्वे प्राचार्याणां विप्रतिपत्तिं प्रदर्शयति—चतुष्टयीति। ननु प्रवृतीनां वृत्तीनां च चतुष्टयी चतुःप्रकारा गतिः व्यवहारः, देशास्तु अनन्ताः तथा वेषभावाचारप्रवर्तनान्यपि प्रनन्तानीति कथं कार्त्स्न्येन तेषां संग्रहो विधातुं शक्यः ? तत्राह—अनन्तानिति--अनन्तानपि देशान् चतुर्धैव विभज्य वृत्यादीनां चतुष्टयीत्वं

पुरुष को प्रभावित किया उसे कैशिकी वृत्ति के नाम से लोक में प्रसिद्धि मिली। उस वृत्ति की मुनिजनों ने पूर्ववत् प्रशंसा की। साहित्यविद्या वधू द्वारा अत्यधिक रूप से वशीभूत होने पर उसने समासरहित, प्रसंगानुकूल अनुप्रासादिक से युक्त जिन अभिव्यन्जक वाक्यों का प्रयोग किया, उन्हें वैदर्भी रीति कहते हैं। पूर्ववत् मुनिगणों ने उसकी अभ्यर्थना की।

उनमें वेश-भूषा आदि धारण करने की प्रक्रिया का नाम प्रवृत्ति है। विलास—हावभाव का विन्यास क्रम वृत्ति है। तथा वचनों का विन्यास क्रम रीति के नाम से सम्बोधित किया जाता है। वृत्ति तथा प्रवृत्ति के चार ही भेद हैं, किन्तु देशों की संख्या अनन्त है। अतः इन सभी का युगपत् ग्रहण कैसे सम्भव है ? आचार्यों की इस शंका के उत्तर में यायावरीय का मत है कि 'यद्यपि देश अनन्त हैं, फिर भी कार्य सिद्धि के लिए उनका चतुर्धा विभाजन करके ही कविगण व्यवहार करते हैं' इस सिद्धान्त की पुष्टि में राजशेखर उदाहरण प्रस्तुत करते

---

१. वेषभाषानुकरणात् तथाचारप्रवर्तनात्।
संक्षेपेणैव व्याख्याता वृत्ति-रिति-प्रवृत्तयः॥

सामान्येन तदवान्तरविशेषैः पुनरनन्ता एव' इति यायावरीयः। दक्षिणात्समुद्रादुदीचीं दिशं प्रति योजनसहस्रं चक्रवर्तिक्षेत्रं, तत्रैव नेपथ्यविधिः। ततः परं दिव्याद्या अपि यं देशमधिवसेयुस्तद्देश्यं वेशमाश्रयन्तो निबन्धनीयाः। स्वभूमौ तु कामचारः। द्वीपान्तरभवानां तदनुसारेण वृत्तिप्रवृत्ती। रीतयस्तु तिस्रस्तास्तु पुरस्तात्।

तत्रास्ति मनोजन्मनो देवस्य क्रीडावासो विदर्भेषु वत्सगुल्मं नाम नगरम्। तत्र सारस्वतेयस्तामौमेयीं गन्धर्ववत् परिणिनाय। ततस्तद्वधूवरं विनिवृत्य तेषु

कल्पयितुं शक्यते। एतदेव दृष्टान्तद्वारा समर्थयति—चक्रवर्तिक्षेत्रमिति। यथा सामान्यतया सर्वदेशसमूहात्मकमेकमेव चक्रवर्तिक्षेत्रं विभिन्नाभिरवान्तरविशेषताभिः अनेकेषु भागेषु विभज्यते तथैवावान्तर्देशविशेषताभिः रीतीनामनन्तत्वेऽपि सामान्येन चतुष्टयीत्वव्यवहारे बाधाभावः। चक्रवर्तिस्वरूपमेव निर्दिशति—दक्षिणादिति। तत्र = चक्रवर्तिक्षेत्रे नेपथ्यविधिः = वेषविन्यासप्रकारः। निबन्धनीयाः = वर्णनीयाः। कामाचारः = इच्छानुरूपं वर्णनं विधेयम्। ततः परं = उक्तदेशेभ्य उत्तरम्। दिव्याः = देवाः, अपि यं देशम् वसेयुः तद्देशे प्रचलितं वेशमाश्रयन्तो वर्णनीयाः, किन्तु स्वकीये देशे यथेच्छम्। अन्यद्वीपोत्पन्नानां तद्द्वीपानुकूले वृत्तिप्रवृत्ती वर्णनीये। रीतयस्तु वैदर्भी-गौडी-पाञ्चाल्याख्याः तिस्रः ताः, पुरस्तात् = सप्तमाध्याये नामतो निर्देक्ष्यन्ते।

तत्रास्तीति—तत्र = विदर्भेषु, मनोजन्मनो देवस्य = कामदेवस्य, क्रीडावासः = केलिभूमि। वत्सगुल्मं वत्सगुल्मनामकनगरं = पुरम्। तत्र = वत्सगुल्मे नगरे स

हुए कहते हैं कि जिस प्रकार यह सम्पूर्ण (भारत) देश सामान्यतः चक्रवर्ती क्षेत्र है, परन्तु इसके अवान्तर भेदों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण अनन्त माना गया है। चक्रवर्ती क्षेत्र की क्या परिभाषा है? इस प्रश्न के उपस्थित होने पर राजशेखर कहते हैं कि दक्षिण समुद्र से लेकर उत्तर दिशा में एक सहस्र योजन तक विस्तृत भूभाग चक्रवर्ती क्षेत्र है। इस चक्रवर्ती क्षेत्र में वेश धारण की, उपरिवर्णित विधियाँ विहित=प्रसिद्ध हैं। इस चक्रवर्ती क्षेत्र से परे दिव्य देश है। अतः जिस देश में निवास करे, उसी के वेशादिकों का वर्णन प्रस्तुत करना चाहिए, परन्तु अपनी मातृभूमि का वर्णन स्वच्छन्दतापूर्वक किया जा सकता है। यदि दूसरे द्वीपों का वर्णन करना अभीष्ट हो तो उन द्वीपो के अनुकूल ही वृत्ति तथा प्रवृत्ति वर्णन प्रस्तुत करना चाहिए। रीतियाँ ३ प्रकार की हैं। इसका वर्णन आगे उपयुक्त प्रसंग पर किया जायेगा।

विदर्भ देश में वत्सगुल्म नामक नगर मनोज=मन से उत्पन्न होने वाले कामदेव की क्रीडाभूमि है। वहीं पर सारस्वतेय=काव्यपुरुष ने औमेयी = साहित्यविद्यावधू के साथ

प्रदेशेषु विहरमाणं तुषारगिरिमेवाजगाम, यत्र गौरी सरस्वती च मिथः सम्बन्धिन्यौ तस्थतुः। तौ च कृतवन्दनौ दम्पती दत्त्वाशिषं प्रभावमयेन वपुषा कविमानसनिवासिनौ चक्रतुः। तयोश्च तं सर्गं कविभ्यः स्वर्गलोकमकल्पतां, यत्र काव्यमयेन शरीरेण मर्त्यमधिवसन्तो दिव्येन देहेन कवय आकल्पं मोदन्ते।

सरस्वतीपुत्रः तामुमापुत्रीं गन्धर्ववत् = गन्धर्वविवाहविधिना परिणिनाय = उपयेमे, ततः परिणयानन्तरम्, सा चासौ वधूः तद्वधूः यद्वा तस्य वधूः तद्वधूः, साहित्यविद्यावधूः, तेषु तेषु प्रदेशेषु = विभिन्नस्थानेषु विहरमाणं = क्रीडन्तं, भ्रमन्तं वरं = काव्यपुरुषं विनिवृत्य = परावृत्य, तुषारगिरिं = हिमालयमेव, आजगाम, आगतवती अर्थात् वत्सगुल्मे कृतोद्वाहौ तौ तत्तत्स्थानेषु विहरमाणौ हिमालये समुपस्थितौ। यत्र = हिमालयपर्वते, गौरी सरस्वती च पार्वती-सरस्वत्यौ, देव्यौ मिथः = परस्परम्, सम्बन्धिन्यौ = पुत्रयोरुद्वाहस्य वृत्तत्वात् सखीभावमापन्ने, तस्थतुः = स्थिते आस्ताम्। कृतवन्दनौ = कृतप्रणामौ तौ दम्पती = जायापती साहित्यवधू-काव्यपुरुषौ, आशिषं दत्वा = आशीर्वादं प्रदाय, प्रभावमयेन = काल्पनिकेन, शरीरेण = वपुषा, कवीनां = मानसे वस्तुं शीलं ययोः तौ कविमानसवासिनौ = काव्यकर्तृहृदयनिवासशीलौ चक्रतुः = विदधतुः। तयोः = वधूवरयोः साहित्यविद्यावधू-काव्यपुरुषयोः, तं = सर्गं सृष्टिम्, कविभ्यः = काव्यकर्तृभ्यः स्वर्गलोकं स्वर्गम्, अकल्पतां = कल्पितवत्यौ ते द्वे देव्यौ। यत्र = स्वर्लोके कवयः काव्यमयेन शरीरेण काव्यरूपेण वपुषा, मर्त्यलोकमधिवसन्तोऽपि = मानवलोके तिष्ठन्तोऽपि दिव्येन देहेन आकल्पं = कल्पपर्यन्तं मोदन्ते = नन्दन्ति। तथा चोक्तम्—

आसेदुषामपि दिवं कविपुङ्गवानां
तिष्ठत्यखण्डमिह काव्यमयं शरीरम्॥

गान्धर्व रीति से विवाह किया। विवाह के उपरान्त साहित्यविद्यावधू ने उन-उन प्रदेशों में विहार करते हुए वर=काव्यपुरुष को लौटाकर हिमालय पर्वत पर ही आ गयी, जहाँ पार्वती और सरस्वती दोनों समधिन के रूप में सखी भाव से उपस्थित थीं। उस दम्पती=स्त्रीपुरुष के द्वारा प्रणाम करने पर उन दोनों ने आशीर्वाद प्रदान किया तथा केवल प्रभावमय=भावनामय शरीर वाले उन दोनों को कवियों के मानसपटल पर निवास करने वाला बना दिया। इस प्रकार उन्होंने उन दोनों=काव्यपुरुष तथा साहित्यविद्यावधू की उस सृष्टि को कवियों के लिए कविलोक नामक एक अभिनव स्वर्ग बना दिया, जहाँ जाकर कविगण काव्य-शरीर से मर्त्यलोक में निवास करते हुए कल्पपर्यन्त आनन्द उठाते हैं।

इत्येष काव्यपुरुषः पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
एवं विभज्य जानानः प्रेत्य चेह च नन्दति ॥

॥ इति राजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे
काव्यपुरुषोत्पत्तिनामकः तृतीयोऽध्यायः ॥

अध्यायमुपसंहरन्नाह—इत्येष इति । इति = इत्थम्, पुरा=पूर्वम्, स्वयम्भुवा= ब्रह्मणा, एषः = अयम्, काव्यपुरुषः = सरस्वतेयः, सृष्टः = रचितः । एवम्, इत्थम्, विभज्य = उत्पत्तिविकासादिकं विविच्य, काव्यसाहित्ये पृथक् पृथक् कृत्वा जानानः = जानन् जनः, प्रेत्य = परलोके, इह = इहलोके अस्मिन् संसारे च नन्दति = समृद्धः सन् मोदते ।

इति श्रीमुखशाण्डिल्यगोत्रजन्मना डॉ० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना
कृतायां काव्यमीमांसाया विमलाख्यायां व्याख्यायां
काव्यपुरुषोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ।

—:o:—

इस प्रकार लोकपितामह ब्रह्माजी ने पहले इस काव्य पुरुष की सृष्टि की थी। जो व्यक्ति इस सरस्वती पुत्र काव्य पुरुष की उत्पत्ति एवं विकास का विवेचन कर जानेगा वह इस लोक और परलोक में आनन्द की प्राप्ति कर प्रसन्न होगा।

इस प्रकार कविराजशेखरकृत काव्यमीमांसा के प्रथम अधिकरण के तृतीय अध्याय
पर पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी द्वारा की गयी सुधा हिन्दी व्याख्या समाप्त ।

चतुर्थोऽध्यायः

शिष्यप्रतिभे ४

द्विविधं शिष्यमाचक्षते तद्यथा बुद्धिमानाहार्यबुद्धिश्च। यस्य निसर्गतः शास्त्रमनुधावति बुद्धिः स बुद्धिमान्। यस्य च शास्त्राभ्यासः संस्कुरुते बुद्धिमसावाहार्यबुद्धिः। त्रिधा च सा, स्मृतिर्मतिः प्रज्ञेति। अतिक्रान्तस्यार्थस्य स्मर्त्री स्मृतिः। वर्त्तमानस्य मन्त्री मतिः। अनागतस्य प्रज्ञात्री प्रज्ञेति। सा त्रिप्रकाराऽपि कवीना-

---

अथ पूर्वं कल्पितकथाद्वारा काव्योत्पत्तिं तत्स्वरूपं च निर्दिश्यास्मिन्नध्याये काव्यविद्याधिकारिणं काव्यसृष्टिकारणं च विवेक्तुमुपक्रमते—काव्यं कस्मै उपदेष्टव्यं किं तस्य कारणमितिशङ्कायामाह—**शिष्यप्रतिभे** इति। तदुक्तस्वरूपं काव्यं शिष्यायोपदेष्टव्यं स एवास्ति तदधिकारी तत्कारणं च प्रतिभा एव। अतः शिष्यप्रतिभे-व्याख्यातव्ये इति सूत्रतात्पर्यम्।

शिष्यभेदं प्रदर्शयति—**द्विविधमिति**—विद्वांसो हि शिष्यं द्विविधमाचक्षते = कथयन्ति—एको बुद्धिमान्, अपरः आहार्यबुद्धिः। यस्य बुद्धिः = प्रज्ञा निसर्गतः = स्वभावात् शास्त्रमनुधावति = अनुसरति स बुद्धिमान्, यस्य च बुद्धिः शास्त्राभ्यासः = शास्त्रसम्बन्ध्यभ्यासः शास्त्रानुशीलनम् बुद्धिः संस्कुरुते = परिष्कुरुते, उत्तेजयति असौ = शिष्यः आहार्यबुद्धिः।

सा = बुद्धिः त्रिधा त्रिप्रकारा। भूतभवद्भविष्यदर्थस्थस्य पर्यालोचयित्वात् तस्या त्रैविध्यम्। अतिक्रान्तस्य = व्यतीतस्य, अर्थस्य = विषयस्य, स्मर्त्री = स्मरणकर्त्री वर्तमानस्य = तत्कालमनुभूयमानस्य अर्थस्य, मन्त्री = मननकर्त्री बुद्धिः मतिः अनागतस्य = भाविनोऽर्थस्य, प्रज्ञात्री = कल्पानात्मकज्ञानरूपिणी। स्मृत्यादिभेदेन

शिष्यों के दो भेद होते हैं—(१) बुद्धिमान्, (२) आहार्यबुद्धि। स्वाभाविक रूप से जिसकी बुद्धि शास्त्रों के रहस्य को आत्मसात् कर लेती है, वह बुद्धिमान् है, किन्तु जिसकी बुद्धि शास्त्रों के सतत अनुशीलन करने से संस्कारित होती है वह आहार्यबुद्धि है।

बुद्धि के भी तीन भेद होते हैं—(१) स्मृति, (२) मति और (३) प्रज्ञा। अतीत काल में घटित अर्थों का स्मरण करने वाली बुद्धि का नाम स्मृति है। वर्तमान=प्रस्तुत विषयों का मनन करने वाली बुद्धि का नाम मति है, तथा भविष्य कालिक विषयों की उद्भावना कराने वाली बुद्धि का नाम प्रज्ञा है। तीन प्रकारवाली यह बुद्धि कवियों का उपकार करने वाली है।

मुपकर्त्री। तयोर्बुद्धिमान् शुश्रूषते शृणोति गृह्णीते धारयति विजानात्यूहतेऽपोहति तत्त्वं चाभिनिविशते। साहार्यबुद्धेरप्येत एव गुणाः, किन्तु प्रशास्तारमपेक्षते। अहरहः सुगुरूपासना तयोः प्रकृष्टो गुणः। सा हि बुद्धिविकाशकामधेनुः। तदाहुः—

प्रथयति पुरः प्रज्ञाज्योतिर्यथार्थपरिग्रहे
तदनु जनयत्यूहापोहक्रियाविशदं मनः।

त्रिप्रकाराणि सा बुद्धिः कवीनां काव्यकर्तॄणामुपकारकारिणी वर्तते। तयो=द्वयोः बुद्धिमदाहार्यबुद्धयोः शिष्ययोः मध्ये बुद्धिमान् शिष्यः सुश्रूषते=गुरुमुपास्ते, गुरूपदेशं श्रोतुमिच्छति, शृणोति=सावधानेन मनसा गुरूक्तमाकर्णयति, गृणीते=गुरुवचनं यथावदवगच्छति, धारयति=चित्ते पदार्थं स्थिरीकरोति, विजानाति=विविच्य ज्ञानवान् भवति, ऊहते=वितर्कयति, अपोहति=प्रसंगतमर्थं परित्यजति, तत्त्वं च अभिनिविशते=वस्तुस्थितिं विजानाति अध्यवस्यति। बुद्धिमतः शिष्यस्य एते अष्टौ गुणा स्वाभाविकाः=सहजा भवन्ति।[1] आहार्यबुद्धिशिष्यगुणानाह—आहार्यबुद्धेः-रिति आहार्यबुद्धेरपि एते एव गुणा भवन्ति, किन्तु न भवन्ति ते स्वाभाविकाः यथा बुद्धिमतः शिष्यस्य भवन्ति। यद्युभयोः समान एव गुणस्तर्हि कोऽनयोर्भेदः इत्यत आह-किन्तु इति—यद्यप्याहार्यबुद्धेरप्येते गुणा भवन्ति, किन्तु स प्रस्तारम्=पथप्रदर्शकमपेक्षते, न तमन्तरा स स्वयमाधातुं शक्नोति। अहरहः=प्रतिदिनम्। सुगुरूपासना=सद्गुरोः सेवा, तयोः=बुद्धिमदार्यबुद्धयोः प्रकृष्टो गुणः=उत्तमो गुणः। सा हि=गुरूपासना हि बुद्धेर्विकासस्य स्फूर्तेः कामधेनुः=कामगवीस्वरूपा।

सद्गुरूपासनाया बुद्धिविकासकामधेनुत्वं विवृणोति—प्रथयतीति। विद्यायां

(अब राजशेखर बुद्धिमान् शिष्य तथा आहार्य बुद्धि शिष्यों के लक्षण प्रस्तुत करते हैं—)

उन दोनों=बुद्धिमान् एवं आहार्यबुद्धि में बुद्धिमान् शिष्य गुरुकी सेवा करता है, विषय को सुनाता अर्थात् अध्ययन करता है, ग्रहण करता है, हृदयंगम करता है, विशेषज्ञ से जानकारी प्राप्त करता है, ज्ञातविषय पर तर्क करता है, शंका का समाधान करता है तथा अनन्त का साक्षात्कार कर ज्ञान प्राप्त कर लेता है। आहार्यबुद्धि शिष्य में भी बुद्धिमान् के सभी गुण होते हैं, परन्तु उसे किसी न किसी गुरु की अपेक्षा रहती है। उन दोनों के लिए श्रेष्ठ आचार्य की उपासना एक महान् श्रेष्ठ गुण है, क्योंकि बौद्धिक विकास के लिए गुरु की सेवा कामधेनु के समान है। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित कथन प्रसिद्ध है--

विद्यावृद्ध विद्वज्जनों की संगति क्रमशः अमृत के तुल्यफल प्रद होती हैं, क्योंकि सर्व-

---

१. शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः॥

अभिनिविशते तस्मात्तत्त्वं तदेकमुखोदयं
सह परिचयो विद्यावृद्धैः क्रमादमृतायते ॥

ताभ्यामन्यथाबुद्धिर्दुर्बुद्धिः । तत्र बुद्धिमतः प्रतिपत्तिः । स खलु सकृदभिधान-प्रतिपन्नार्थः कविमार्गं मृगयितुं गुरुकुलमुपासीत । आहार्यबुद्धेस्तु द्वयमप्रतिपत्तिः

वृद्धाः श्रेष्ठाः विद्यावृद्धास्तैः विद्यावृद्धैः = वयसा नवीनैरपि ज्ञानवृद्धैः, सह = साकम्, परिचयः = प्रणयः, क्रमात् = क्रमशः, उत्तरोत्तरम्, अमृतायते = अमृतवदाचरति, विद्यावृद्धोपासना पीयूषमिव जीवनस्य बुद्धेश्च सन्दीपनी। विद्यावृद्धानां परिचयो हि पुरः=प्रथमं, यथार्थस्य यथावत् स्थितस्य वस्तुनः परिग्रहे परिज्ञाने प्रज्ञा वै बुद्धिरेव, ज्योतिः = अज्ञानतमोनाशकत्वात् तेजः प्रकाशं प्रथयति विस्तारयति, तदनु= तदनन्तरं प्रज्ञाज्योतिः मनः = चेतः, अन्तःकरणम्, ऊहश्च अपोहश्च ऊहापोहौ तयोः क्रियार्थं विशदम्, ऊहापोहक्रियाविशदं तत् ऊहापोह-क्रियाविशदं=तर्कविरुद्धांशपरित्यागव्यापारचतुरं जनयति विदधाति, सदसद्विवेचन-मर्थं स करोति । तस्मात् = विवेचनसामर्थ्यात्, तत् मनः, एकमुखोदयं—एकं केवलं मुखं प्रधानम् उदयः उत्कृष्टं भवति यस्मिन् तत् एकमुखोदयम् = तदेकप्रधानम् । तत्त्वं = वस्तुयाथार्थ्यम्, अभिनिविशते = अध्यवस्यति, निश्चिनोति । वृद्धोपा-सनया धीगुणाः वर्द्धन्ते, वृद्धाश्च ते बुद्धिं विस्फारयन्तीतिभावः ।

तृतीय शिष्यभेदं दर्शयति—ताभ्यामिति । ताभ्यां = बुद्धिमदाहार्यबुद्धिभ्याम् । अन्यथाबुद्धिः = विपरीतमतिः दुर्बुद्धिः = दूषितबुद्धियुक्तः शिष्यः तृतीयो भवति । एवं त्रिविधानां तेषां क्रियाभेदं दर्शयति—तत्रेति । तत्र = तेषु त्रिविधेषु शिष्येषु मध्ये बुद्धिमतः शिष्यस्य, प्रतिपत्तिः = सकृदुक्तस्यार्थस्यावधाने समर्थं ज्ञानम्, वर्तते इति शेषः । स खलु = बुद्धिमान् शिष्यः किल, सकृत् एक-वारम् अभिधाने कथने प्रतिपन्नः ज्ञातः अर्थः तत्त्वं येन स सकृदभिधानप्रतिपन्नार्थः, कविमार्गं कविसरणिम्, मृगयितुम् = अन्वेष्टुं प्राप्तुम्, गुरुकुलं गुरुगृहम्, उपासीत =

प्रथम उक्त संगति से प्रज्ञा रूपी ज्योति वास्तविक अर्थ का ग्रहण करने में समर्थ होती है। उसके पश्चात् मन ऊहापोह=अधीत विषय पर शंका एवं समाधान के लिए समर्थ बन जाता है, इसके उपरान्त एकमुख होकर मन, तत्त्व को उपलब्ध=ग्रहण कर लेता है।

उपर्युक्त दोनों शिष्यों के विपरीत बुद्धि वाले शिष्यों को दुर्बुद्धि माना गया है। बुद्धिमान् शिष्य ही विषयों की प्रतिपत्ति=उपलब्धियाँ करने में समर्थ होता है। एक बार में ही व्याख्यात अर्थ का बोध प्राप्त करने वाले उस बुद्धिमान् शिष्य को कविमार्ग का ज्ञान प्राप्त करने के लिए गुरुकुल में निवास करना चाहिए। आहार्यबुद्धि को दो बार बताने पर अर्थ की प्रतीति

सन्देहश्च। स खल्वप्रतिपन्नमर्थं प्रतिपत्तुं सन्देहं च निराकर्तुमाचार्यानुपतिष्ठेत। दुर्बुद्धेस्तु सर्वत्र मतिविपर्यास एव। स हि नीलीमेचकितसिचयकल्पोऽनाधेयगुणान्तरत्वात्तं यदि सारस्वतोऽनुभावः प्रसादयति तमौपनिषदिके वक्ष्यामः। काव्यकर्मणि कवेः समाधिः परं व्याप्रियते' इति श्यामदेवः। मनस एकाग्रता समाधिः। समाहितं चित्तमर्थान् पश्यति, उक्तञ्च—

सेवेत। अपरिहार्यबुद्धेः शिष्यस्य तु द्वयं = द्वितयम्, अप्रतिपत्तिः = अज्ञानम्, सन्देहश्च = शङ्का च तिष्ठति। अतः सः = आहार्यबुद्धिः, अप्रतिपन्नम् = अज्ञातम्, अर्थं प्रतिपत्तुं ज्ञातुं शङ्कां = सन्देहञ्च निराकर्तुं = दूरीकर्तुम्। आचार्यान् = गुरून्, उपतिष्ठेत = सेवेत। तृतीयप्रकारकस्य दुर्बुद्धेः = शिष्यस्य, सर्वत्र = सर्वेषु विषयेषु मतिविपर्यासः = बुद्धिविभ्रमः, स दुर्बुद्धिप्रभावात् उचितमनुचितं न जानाति। नील्या नीलीवर्णेन मेचकितं = नीलीकृतम् सिचयं = वस्त्रं तेन तुल्यः = समानः तत्कल्प इति नीलीमेचकितसिचयकल्पः = नीलवर्णरञ्जितवस्त्रसमानः। अनाधेयगुणत्वात्—अनाधेयम् आरोपयितुमशक्यं गुणान्तरं वर्णान्तरं यस्मिन् स अनधेयगुणः तस्य भावः तत्त्वं तस्मात् = तस्मिन् कमपि अन्यं गुणमाधातुं न शक्यते। यदि सरस्वत्या अयं सारस्वतेयः अनुभावः = प्रसादः तं दुर्बुद्धिं प्रसादयति—प्रसादपात्रीकरोति। अर्थात् एकमात्रं सरस्वत्या विशिष्टया कृपयैव स कविर्भवितुमर्हति, एनमपायम् औपनिषदिकेऽधिकरणे वक्ष्यते कविना स्वयमेव तत एवावधेयम्।

काव्यनिर्माणे प्रधानं साधनं विमृशन् श्यामदेवाचार्यस्य मतमुपस्थापयति—काव्यकर्मणि = कवितानिर्माणे कवेः = काव्यकर्तुः, समाधिः = चित्तैकाग्रता, परं = उत्कृष्टम्, व्याप्रियते, साधनी भवति। अर्थात् काव्यक्रियायां मनस एकाग्रता अपेक्ष्यते इति श्यामदेवाचार्यस्य मतम्। समाहितम् = अवहितं, चित्तं = कविमनः,

---

होती है तथा अधीत विषय में सन्देह भी बना रहता है। अर्थ का परिज्ञान होने पर भी सन्देह बने रहने की सम्भावना बनी रहती है। अतः उपलब्ध ज्ञान को और अधिक पुष्ट एवं परिपक्व करने के लिए उसे आचार्यों की शरण जाना चाहिए, परन्तु दुर्बुद्धि को यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति न होकर उसे सर्वत्र उलटा ही आभास होता है। जिस प्रकार नीले रंग से रंगे हुए वस्त्र पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता है उसी प्रकार दुर्बुद्धि की बुद्धि में भी किसी विषय का यथार्थ बोध नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति केवल सरस्वती की कृपा से कवि बन सकता है। उसका वर्णन मैं औपनिषादक प्रकरण में करूँगा।

आचार्य श्यामदेव के मत से काव्य सृजन में कवि को समाधि=मन की एकाग्रता की आवश्यकता है। मन की एकाग्रता ही समाधि है। किसी भी विषय-विशेष में समाहित

सारस्वतं किमपि तत्सुमहारहस्यं यद्गोचरं च विदुषां निपुणैकसेव्यम् ।
तत्सिद्धये परमयं परमोऽभ्युपायो यच्चेतसो विदितवेद्यविधेः समाधिः ॥

'अभ्यासः' इति मङ्गलः । अविच्छेदेन शीलनमभ्यासः । स हि सर्वगामी सर्वत्र निरतिशयं कौशलमाधत्ते । समाधिरान्तरः प्रयत्नो बाह्यस्त्व-

---

अर्थान् = अभिनवपदार्थान्, पश्यति = अप्रतिबन्धमुल्लिखति ।

उक्तार्थं प्रत्याचार्यमतं प्रमाणयति—**सारस्वतमिति**–तत् = अनिर्वचनीयम्, सारस्वतं = सरस्वीतसम्बन्धि, किमपि लक्षयितुमशक्यम्, सुमहारहस्यं = विशिष्टं सारं वर्तते । यत् = यत्तत्त्वम् । विबुषां = देवतुल्यानां विपश्चिताम् । गोचरे = विषये निपुणैकसेव्यम् = कवलं निपुणेन सेव्यम्, तत्सिद्धये = तादृशस्य महारहस्योपलब्धये अयं = एषः परमः = श्रेष्ठः, अभ्युपायः = साधनमस्ति । तत् विदितवेद्यविधेः = विदितः = ज्ञातः वेद्यानां पदार्थानां विधिः = प्रकारः येन स तस्य विदितवेद्यविधेः = चेतसः = चित्तस्य, समाधिः = एकाग्रता भवतु इति शेषः ।

काव्यकर्मणि मङ्गलाचार्यमतं प्रदर्शयति—**अभ्यास इति मङ्गल इति**–अभ्यासः काव्यकर्मणि व्यापार इति मङ्गलः = वात्स्यायनसूत्रभाष्यकर्ता जयमङ्गलः वक्तीति-शेषः । तत्कृतमभ्यासलक्षणं निर्दिशति—**अविच्छेदेनेति** । अविच्छेदेन = सातत्येन, शीलनं = अन्यकविकृतकाव्यानुशीलनम् अभ्यासः = अभ्यासपदाभिधेयः । अभ्यास-प्रयोजनमभिधत्ते—स इति । स हि अभ्यासः सर्वगामी सर्वत्र = सर्वेषु विषयेषु निरतिशयं = सर्वोत्कृष्टं कौशलं = नैपुण्यम् चातुर्यम्, आधत्ते = सम्पादयति ।

समाधिः, अभ्यासो वा न काव्यस्य साक्षात् कारणे, किन्तु शक्तिरेवेति स्वकीयं मतं व्यनक्ति—**समाधिरिति** । समाधिः आन्तरः=आन्तरिकः, मानसिकः, अभ्यासस्तु

चित्त व्यक्ति ही विभिन्न अर्थों का साक्षात्कार कर पाता है ।

सरस्वती अर्थात् काव्यभारती का तत्त्व=महान् रहस्य छिपा है । यह केवल विद्वानों की ही दृष्टि में प्रकट होता है तथा प्रवीण व्यक्तियों के द्वारा ही सेवनीय है । अतः उस काव्य-भारती से यथार्थ रहस्य के ज्ञान के लिए ज्ञान जानने योग्य विधान के ज्ञाता मन की परम एकाग्रता अर्थात् समाधि की आवश्यकता है ।

निरन्तर अभ्यास करना ही काव्यतत्त्व की उपलब्धि का श्रेष्ठतर उपाय है, ऐसा आचार्य मंगल का अभिमत है । व्यवधानरहित सतत अनुशीलन का नाम अभ्यास है । सभी विषयों में समान भाव से व्यापक=कार्यक्षम उस अभ्यास के द्वारा कवि कर्म अत्यन्त कुशलता से प्राप्त होता है, मानसिक एकाग्रताजन्य समाधि आभ्यन्तर=अन्तः प्रयत्न है,

भ्यासः तावुभावपि शक्तिमुद्भासयतः। 'या केवलं काव्ये हेतुः' इति यायावरीयः। विप्रसृतिश्च सा प्रतिभाव्युत्पत्तिभ्याम्। शक्तिकर्तृके हि प्रतिभाव्युत्पत्तिकर्मणी। शक्तस्य प्रतिभाति शक्तश्च व्युत्पद्यते। या शब्दग्राममर्थमलङ्कारतन्त्रमुक्तिमार्गमन्यदपि तथाविधमधिहृदयं प्रतिभासयति सा प्रतिभा। अप्रतिभस्य पदार्थसार्थः परोक्ष इव, प्रतिभावतः पुनरपश्यतोऽपि प्रत्यक्ष इव। यतो मेधाविरुद्रकुमारदासादयो

बाह्यः = बहिर्भवः, प्रयत्नः = उपायः, तावुभौ = समाध्यभ्यासौ, शक्ति = कवित्वबीजभूतां काञ्चिद् वासनाम्, उद्भासयतः = उत्तेजयतः। अतः काव्यकर्मणि सैव शक्तिरेव हेतुः = कारणम्, इति ययावरीयः = यायावरगोत्रोद्भवो राजशेखर कविः कथयति। प्रतिभाव्युत्पत्तिभ्यां शक्तेर्भेदं दर्शयति—विप्रसृतिरिति। सा = शक्तिः प्रतिभाव्युत्पत्तिभ्यां विप्रसृतिः = दूरवर्तिनी, भिन्ना।

शक्तिकर्तृके हि प्रतिभाव्युत्पत्तिकर्मणी=प्रतिभाव्युत्पत्ती क्रिये शक्तिजन्ये स्तः। सक्तः = शक्तिमान् व्युत्पाद्यते = लोकशास्त्रकाव्येषु निपुणो भवति, शक्तस्य = शक्तिमतः प्रतिभाति = काव्यघटनानुकूलपदार्थोपस्थितिर्जायते। अर्थात् शक्तिसम्पन्नस्यैव पुंसः प्रतिभया पदार्थावभासो भवति तथा शक्त एव व्युत्पतिमान् जायते। शब्दग्रामं = शब्दसमूहम्। अर्थसार्थं = अर्थसमवायम्, अलङ्कारतन्त्रं = शब्दार्थोपमालङ्कारप्रपञ्चम्, उक्तिमार्गं = उक्तिचमत्कारम्, अधिहृदयं = हृदयाभ्यन्तरे। प्रतिभासयति = समुद्भासयति या सा प्रतिभा। यस्याः = प्रयोजनमाह—अप्रतिभस्येति। अप्रतिभस्य=प्रतिभाहीनस्य, पदार्थसार्थः = पदार्थसमूहः, परोक्ष इव प्रत्यक्षोऽपि परोक्ष इव, प्रतिभावतः = प्रतिभाशालिनः, अपश्यतः = अनवलोकयतः प्रत्यक्ष इव = परोक्षोऽपि प्रत्यक्ष इव। यतः = काव्यनिर्माणे प्रतिभायाः हेतुत्वात्।

किन्तु अभ्यास बाह्य प्रयत्न है, ये दोनों आभ्यन्तर तथा बाह्य प्रयत्न शक्ति की उद्भावना अर्थात् काव्यनिर्माणरूपी शक्ति को जन्म देते हैं। वह शक्ति ही काव्य निर्माण में हेतु है, यह यायावरीय का मत है। शक्ति प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति से विलक्षण है। अर्थात् सर्वथा भिन्न है, क्योंकि शक्ति से ही प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति का जन्म होता है, काव्यशक्ति से सम्पन्न व्यक्ति को प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति प्राप्त होती है। जिस काव्यशक्ति के द्वारा शब्दसमूह, अर्थसमूह, अलङ्कारशास्त्र, उक्तिमार्ग अर्थात् सूक्तिनिबन्धन की प्रक्रिया तथा अन्य काव्यतत्त्व हृदय में अवभासित होते हैं। उसे ही प्रतिभा के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रतिभारहित कवि के लिए समस्त काव्यतत्त्व प्रत्यक्ष नहीं होते हैं, किन्तु प्रतिभावान् के समक्ष अप्रत्यक्ष तत्त्व भी प्रत्यक्ष की तरह अवभासित हो उठता है।

जात्यन्धाः कवयः श्रूयन्ते ।) केचन महाकवयोऽपि देशद्वीपान्तरकथापुरुषादिदर्शनेन तत्रत्यां व्यवहृतिं निबध्नन्ति स्म । तत्र देशान्तरव्यवहारः—

प्राणानामनिलेन वृत्तिरुचिता सत्कल्पवृक्षे वने
तोये काञ्चनपद्मरेणुकपिशे पुण्याभिषेकक्रिया ।
ध्यानं रत्नशिलागृहेषु विबुधस्त्रीसन्निधौ संयमो
यत् काङ्क्षन्ति तपोभिरन्यमुनयस्तस्मिंस्तपस्यन्त्यमी ॥[1]

अतो मेधाविप्रभृतयो जात्यन्धाः = जन्मान्धा अपि लोकोत्तरवर्णनानिपुणाः श्रूयन्ते ।

अन्यदप्याह—**केचनेति**—प्रतिभासम्पन्नाः महाकवयः स्वदेशे स्थिता अपि प्रतिभामहिम्ना देशान्तरस्था द्वीपान्तरस्थां व्याहृतिं = व्यवहारं निबध्नन्ति = वर्णयन्ति । दिव्यदर्शनवतां महाकवीनां सकलं जगत् प्रत्यक्षं जायते इति दर्शयितुमुपक्रमते—**तत्रेति** । अभिज्ञानशाकुन्तले देवकार्यं सम्पाद्य प्रत्यागच्छतो मारीचाश्रमदर्शनेन संजातविस्मयस्य राज्ञो दुष्यन्तस्य उक्तौ देशानां व्यवहारं दर्शयति—**प्राणानामिति** । सन् समीचीनः, अभीप्सितार्थप्रदायकः कल्पवृक्षो यस्मिन् तत् तस्मिन् सत्कल्पवृक्षे कल्पवृक्षसनाथे वने = अरण्ये, यत्र संकल्पमात्रेण मनोरथानां सिद्धिर्भवति तत्र । प्राणानां = असूनाम्, उचिता = अवश्यकर्तव्या, वृत्तिः = प्राणधारणक्रिया, अनिलेन = वायुना भवति, न तु कल्पवृक्षदत्तवस्तुना, काञ्चनपद्मरेणुकपिशं = काञ्चनपद्मानां = सुवर्णकमलानाम्, रेणुभिः = पांशुभिः कपिशे = पिङ्गवर्णे तोये = जले धर्मार्थाभिषेकक्रिया = धर्मार्थाभिषेकस्य = पुण्याभिषेकस्य क्रिया = व्यापारः त्रैकालिकस्नानविधिर्भवति । रत्नशिलागृहेषु = रत्नशिलापट्टेषु, ध्यानं =

ऐसा सुना जाता है कि मेधावी, रुद्र तथा कुमारदास आदि कवि जन्मान्ध थे, फिर भी उन्होंने प्रत्यक्षदर्शी कवि की तरह ही काव्यसृजन किया ।

कतिपय महाकवियों ने अन्य देश तथा द्वीपों की कथा वहाँ के पुरुषों तथा उन देशों के व्यवहार का वर्णन, अपनी प्रतिभा के बल पर इस प्रकार किया है, मानो वे उस देश के प्रत्यक्ष द्रष्टा हों, देशान्तर व्यवहारवर्णन का निम्न उदाहरण है—

समस्त मानवीय इच्छाओं की पूर्ति करने वाले कल्प वृक्षों के वन में केवल वायुवृत्ति द्वारा प्राणों का धारण, स्वर्ण कमलों के पराग से पीताभ हो जाने वाले जल में पुण्य स्नान, मणि, माणिक्य मुक्ता आदि रत्नों के शिलाखण्डों से निर्मित घरों में ध्यान, देवाङ्गनाओं के

---

१. उपर्युक्त श्लोक अभिज्ञानशाकुन्तल ७।१२ में मरीच ऋषि के आश्रम का वर्णन प्रस्तुत कर रहा है । यहाँ अपनी आँखों से न देखे हुए भी स्वर्गीय व्यवहार की कल्पना कवि ने अपने मन से कर दी है ।

द्वीपान्तरव्यवहारः—

अनेन सार्द्धं विहराम्बुराशेस्तीरेषु ताडीवनमर्मरेषु ।
द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैरपाकृतस्वेदलवा मरुद्भिः ॥

समाधिः, विबुधस्त्रीसन्निधौ विबुधानां = देवानाम्, स्त्रीणां = पत्नीनाम् अप्सरसाम्, सन्निधौ = समीपे संयमः=इन्द्रियनिग्रहः, क्रियते, आश्चर्यं महदाश्चर्यम् । अन्यमुनयः= अपरे भूयिष्ठाः तपस्विनः तपोभिः = तपस्याभिः, यत् स्थानं कांक्षन्ति = वाञ्छन्ति, तस्मिन् = स्थाने, अमी = एते मरीचप्रभृतयो मुनयः, तपस्यन्ति = तपश्चरन्ति । अत्र स्वनेत्राभ्यामदृष्टोऽपि स्वर्गलोकव्यवहारः मर्त्यलोकनिवासिना कविना कालिदासेनाभिज्ञानशाकुन्तले नाटके स्वकीयप्रतिभाबलादुपनिबद्धः ।

द्वीपान्तरव्यवहारनिबन्धनं यथा रघुवंशस्य षष्ठे सर्गे = अनेन सार्द्धमिति । अनेन = पुरोवर्तिना कलिङ्गनाथेन हेमाङ्गदेन राज्ञा सार्द्धं = साकम्, तालीवनमर्मरेषु = तालीनां तालवृक्षाणां वनानि = काननानि तालीवनानि तैः मर्मराणि = मर्मरध्वनिमन्ति तालीवनमर्मराणि तेषु, तालीवनमर्मरेषु अम्बुराशेः अम्बूनां जलानां राशिः यत्र स तस्याम्बुराशेः = सागरस्य । तीरेषु = तटेषु द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैः = अन्यानि द्वीपानि द्वीपान्तराणि दीपान्तरेभ्य आनीतानि आहृतानि लवङ्गपुष्पाणि (लवङ्गस्य देवलतायाः पुष्पाणि लवङ्गपुष्पाणि) देवकुसुमानि यैः तानि तैः, द्वीपान्तरानीतलवङ्गपुष्पैः = मरुद्भिः = वायुभिः, अपाकृतस्वेदलावा = स्वेदस्य धर्मस्य लवाः विन्दवः स्वेदलवाः अपाकृताः अपनीताः स्वेदलवा धर्मविन्दवो यस्याः सा सती त्वं विहर = विहारं कुरु, क्रीड । अत्र सुनन्दाद्वारा कलिङ्गनाथमुपवर्णयता कालिदासेन, स्वाननुभूतंसमुद्रतटवर्ति द्वीपान्तरोत्पन्नलवङ्गपुष्पाणां सम्पर्कात् सौरभवायुना सुरतकालीनश्रमोद्भवस्वेदलवापकरणवर्णनं स्वप्रतिभाबलेनैवोपनिबद्धम् ।

साहचर्य में इन्द्रिय संयम आदि करना अत्यन्त आश्चर्य का विषय है, क्योंकि अन्य मुनिजन अपने तपश्चरण द्वारा उपर्युक्त वर्णित जिन पदार्थों की कामना करते है, उन्ही के मध्य रहकर ये मुनिलोग तपस्या कर रहे हैं ।

द्वीपान्तर व्यवहार का वर्णन—

प्रस्तुत श्लोक रघुवंश के इन्दुती स्वयंवर वर्णन से लिया गया है । यहाँ पर सुनन्दा दक्षिण देश के राजा का वर्णन करती हुई कहती है—ताड़ वृक्षों की मर्मर ध्वनि से परिपूर्ण समुद्र के किनारे पर, इस राजा के साथ विहार करो, जहाँ पर अन्य द्वीपों से लवङ्ग पुष्पों की गन्ध मिश्रित वायु तुम्हारे सम्भोग जन्य श्रमसीकर को दूर करेगा । यहाँ भी कवि ने अपनी कल्पनाप्रतिभा से समुद्रतटवर्ती द्वीप का वर्णन किया है ।

कथापुरुषव्यवहारः—

हरोऽपि तावत् परिवृत्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥

आदिग्रहणात्—

तथागतायां परिहासपूर्वं सख्यां सखी वेत्रभृदाबभाषे ।
बाले व्रजामोऽन्यत इत्यथैनां वधूरसूयाकुटिलं ददर्श ॥

कथापुरुषव्यवहारमुदाहरति कुमारसम्भवे महाकाव्ये—हरोऽपीति । चन्द्रोदयारम्भे = चन्द्रोदयप्रारम्भकाले, अम्बुराशिः = सागर इवः यथा, परिवृत्तधैर्यः = ईषच्छिथिलीभूतधैर्यः, हरोऽपि = शिवोऽपि = बिम्बफलाधरोष्ठे = बिम्बफलमिव अधरोष्ठं यस्मिन् तत् तस्मिन् बिम्बफलाधरोष्ठे = बिम्बफलोपमाधरोष्ठशालिनि उमामुखे = पार्वतीवदने, विलोचनानि = नयनानि, व्यापारयामास = प्रेरयामास साभिलाषमद्राक्षीदिति भावः । अत्र त्रिलोचनमनवलोकयता कविना स्वप्रतिभया उमामुखावलोकनजन्यधैर्यस्खलनतया सामिलाषलोचनव्यापारो हरस्योपनिबद्धः ।

देशद्वीपेत्यत्रादिग्रहणात् प्रासङ्गिकस्योपनिबन्धनं यथा—तथागतायमिति । सख्यां = सहचर्यामिन्दुमत्यां पुरोवर्तमानेऽजे जातानुरागायां सत्यां वेत्रभृत् = वेत्रधारिणी द्वावारिकी सखी = सहचरी सुनन्दा, परिहासपूर्वं = सोपहासासं, हे बाले ! अयि बालस्वभावे ! अन्यतः = अन्यत्र, व्रजामः=गच्छामः, इति=इत्थम् आबभाषे= उक्तवती, अथ = अनन्तरं तच्छ्रुत्वा, वधुः=स्वयम्बरवधूः इन्दुमती, एनां=सुनन्दाम्, असूयाकुटिलम् = असूयया कुटिलं यथा स्यात्तथा, ददर्श = अवलोकयामास । अत्र सुनन्देन्दुमत्योः परोक्षं = पारस्परिकं व्यवहारं प्रत्यक्षवद्वर्णयता कविना स्वप्रतिभा-

---

कथापुरुष व्यवहार का वर्णन—

जिस प्रकार चन्द्रमा के उदय होने पर समुद्र का जल धैर्य त्याग कर चंचल हो उठता है उसी प्रकार (उमा को देखकर) उसके बिम्ब फल के समान लाल अधरोष्ठों पर भगवान् शंकर ने अपने नेत्र फेरे ।

(प्रस्तुत उदाहरण में शंकर जी की चेष्टाओं को न देखने पर भी कथाओं में वर्णित विवरण के आधार पर कालिदास ने कुमार संभव काव्य के उक्त पद्य में वर्णन किया है ।)

कथा पुरुष आदि इसमें आदि पद से गृहीत अन्य व्यवहार का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है ।

राजा अज के प्रति आकृष्ट होकर प्रेम विह्वला इन्दुमती के इस प्रकार खड़े होने पर वेश धारण करने वाली सुनन्दा ने परिहास पूर्वक इन्दुमती से कहा, 'हे बाले ! अब यहाँ से

सा च द्विधा कारयित्री भावयित्री च। कवेरुपकुर्वाणा कारयित्री। साऽपि त्रिविधा सहजाऽऽहार्यौपदेशिकी च। जन्मान्तरसंस्कारापेक्षिणी सहजा। इह जन्म-संस्कारयोनिराहार्या। मन्त्रतन्त्राद्युपदेशप्रभवा औपदेशिकी। ऐहिकेन कियतापि संस्कारेण प्रथमां तां सहजेति व्यपदिशन्ति। महता पुनराहार्या। औपदेशिक्याः पुनरैहिक एव उपदेशकालः, ऐहिक एव संस्कारकालः। त इमे त्रयोऽपि कवयः

बलाद् अजविषयकसाभिलाषदर्शनेन परिहसन्तीं सखीं प्रति असूयया कुटिलदर्शन-मुपनिबद्धं रघुवंशे महाकाव्ये षष्ठे सर्गे।

अथ प्रतिभाभेदं दर्शयति—सेति—सा = प्रतिभा, द्विधा = द्विप्रकारा, कवेः= काव्यकर्तुः, काव्यकर्मणि उपकुर्वाणा = उपकारिका। सापि=कारयित्री प्रतिभापि। त्रिविधा = त्रिप्रकारा। तत्र या जन्मान्तरीयं संस्कारमपेक्षते सा प्रथमा सहजा = स्वाभाविकी, इह जन्मनः संस्कारस्य योनिः = कारणं यस्यां सा द्वितीया आहार्या = उत्पाद्या, तन्त्रमन्त्रादीनामुपदेशेनोत्पन्ना तृतीया औपदेशिकी। ननु जन्मान्तर-स्यादृष्टत्वादासां ज्ञानं न सम्भवतीति शङ्कायामाह—ऐहिकेनेति। या जन्मान्तरा-पेक्षिणी अपि एतज्जन्मनोऽल्पेनापि संस्कारेण उद्बुद्धा तां सहजां निर्दिशन्ति विद्वांसः, या पुनः महता संस्कारेणोत्पद्यते सा आहार्या इति व्यपदिश्यते। या च ऐहिकेनैव उपदेशेन संस्कारेण च सम्पद्यते सा औपदेशिकी।

उपदर्शितप्रतिभाभेदात् कवयोऽपि त्रिधा विभज्यन्त इत्याह—त इम इति।

आगे की ओर बढ़ा जाय' ऐसा कहने पर वधू = इन्दुमती ने सुनन्दा की ओर ईर्ष्यापूर्वक कुटिल दृष्टि से देखा।

प्रस्तुत प्रकरण में अपने प्रेमी के प्रति उत्पन्न प्रेमिका की स्वाभाविक वृत्ति का परिज्ञान सभी के लिए सम्भव नहीं है, किन्तु कवि अपनी प्रतिभा के आलोक में सभी कुछ प्रत्यक्ष कर लेता है।

प्रतिभा भी कारयित्री तथा भावयित्री भेद से दो प्रकार की होती है। कारयित्री प्रतिभा कवि का उपकार करने वाली होती है। इसके भी तीन भेद होते हैं:—(१) सहजा, (२) आहार्या और (३) औपदेशिकी। अनेक जन्मों के संस्कार के फलस्वरूप सहजा प्रतिभा उत्पन्न होती है। इसी जन्म के संस्कारों से आहार्या प्रतिभा उपजती है, किन्तु मंत्र, तंत्र आदि के उपदेश एवं अनुष्ठान से औपदेशिका प्रतिभा का उद्भव होता है। विद्वानों का अभिमत है कि किसी ऐहिक संस्कार का सहारा पाते हो सहजा प्रतिभा स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हो जाती है, परन्तु आहार्या प्रतिभा के प्रतिफलन के लिए इस जन्म में महान् प्रयत्न करना होता है। औपदेशिकी प्रतिभा वर्तमान जन्म में मंत्र-तंत्रादिक के उपदेश से उद्भूत तथा संस्कृत होती है। इसी क्रम से कवि भी

सारस्वतः, आभ्यासिकः, औपदेशिकश्च। जन्मान्तरसंस्कारप्रवृत्तसरस्वतीको बुद्धिमान् सारस्वतः। इह जन्माभ्यासोद्भासितभारतीकआहार्यबुद्धिराभ्यासिकः। उपदेशितदर्शितवाग्विभवा दुर्बुद्धिरौपदेशिकः। तस्मान्नेतरौ तन्त्रशेषमनुतिष्ठताम्। 'नहि प्रकृतिमधुरा द्राक्षा फाणितसंस्कारमपेक्षते' इत्याचार्याः। 'न' इति यायावरीयः। एकार्थं हि क्रियाद्वयं द्वैगुण्याय सम्पद्यते। 'तेषां पूर्वः पूर्वः श्रेयान्' इति श्यामदेवः।

त इमे = पूर्वोक्ताः कवयोऽपि त्रयः सारस्वतः आभ्यासिकः, औपदेशिकश्चेति भेदात्। तत्र जन्मान्तरसंस्कारेण = पूर्वजन्मसंस्कारसहकृतेनैहिकसंस्कारेण प्रवृत्ता सरस्वती = समुज्वलबुद्धिः यस्यासौ प्रमथो बुद्धिमान् सारस्वतः। इह जन्मनोऽभ्यासेन उद्भासिता भारती यस्यासौ द्वितीयः आहार्यबुद्धिः आभ्यासिकः उपदेशितैः मन्त्रतन्त्रादिभिः दर्शितः वाचां विभवो येन स तृतीयो दुर्बुद्धिः औपदेशिकः। यतः सारस्वतोऽल्पेन आभ्यासिकश्च बहुना प्रयासेन लब्धसरस्वतीप्रभावौ भवतः। अतः तस्मात् = दुर्बुद्धेः इतरौ तौ सारस्वताभ्यासिकौ न मन्त्रशेषमनुतिष्ठताम्, न तयोः मन्त्रादेरावश्यकता भवति। अत्रार्थे पूर्वाचार्याणां मतं दर्शयति—न हीति। निसर्गेण मधुरा स्वभावतो मधुरा द्राक्षा फणितसंस्कारम् = अर्द्धावर्तितेक्षुरसप्रयोगम्[1], न हि = न, अपेक्षते = प्रतीक्षते। स्वकीयमतमुपस्थापपति—नेति। एकार्थमुद्दिश्य कृतं कार्यं क्रियाद्वयं माधातुं शक्नोति अर्थादेकं प्रकारद्वयेन सम्पादितं समीचीनं भवति। त्रयाणामेषां तारतम्यं प्रदर्शयति—तेषामिति। तेषां = सारस्वताभ्यासि-

---

तीन प्रकार के सारस्वत, आभ्यासिक तथा औपदेशिक होता है। पूर्वजन्म के संस्कार से उत्प्रेरित जिसकी काव्यप्रतिभा प्रस्फुटित होती है, वह बुद्धिमान् सारस्वत कवि के नाम से प्रसिद्ध होता है। इस जन्म के संस्कारों से प्रेरित होकर जिसकी काव्यभारती का उदय होता है, वह आहार्यबुद्धि वाला आभ्यासिक कवि कहा जाता है। मंत्र-तंत्र आदि के द्वारा जिसकी बुद्धि का उन्मेष होकर काव्यरचना प्रस्फुटित होती है वह दुर्बुद्धि औपदेशिक कवि कहलाता है। अतः बुद्धिमान् तथा आहार्य बुद्धि वाले कवियों को मंत्र-तंत्रादिक के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती है। आचार्यों का ऐसा अभिमत है कि स्वभावतः मधुर अंगूर को शक्कर की चासनी में पुनः रससिक्त करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु यायावरीय के मत से यह सिद्धान्त मान्य नहीं है, क्योंकि यदि एक ही विषय की सिद्धि से

---

१. फणितलक्षणं भावप्रकाशे यथा—

इक्षुरसस्तु यः पक्वः किंगाढो बहुद्रवः।
स एवेक्षुविकारेषु ख्यातः फणितसंज्ञया॥

यतः—

सारस्वतः स्वतन्त्रः स्याद्भवेदाभ्यासिको मितः।
औपदेशककविस्त्वत्र वल्गु फल्गु च जल्पति ॥

'उत्कर्षः श्रेयान्' इति यायावरीयः। स चानेकगुणसन्निपाते भवति।

'बुद्धिमत्त्वं च काव्याङ्गविद्यास्वभ्यासकर्म च।
कवेश्चोपनिषच्छक्तिस्त्रयमेकत्र दुर्लभम् ॥

कौपदेशिकानां मध्ये, पूर्वः पूर्वः श्रेयान् औपदेक्षिकात् आभ्यासिकः श्रेयान् = श्रेष्ठः ततश्च सारस्वतः श्रेष्ठ इति **श्यामदेवाचार्यस्यास्तिमतम्**।

पूर्वपूर्वस्य श्रेयस्त्वे कारणं निर्दिशति—**सारस्वत इति**। सारस्वतः स्वतन्त्रः स्यात् = प्रथमः सारस्वतः काव्यनिर्माणे स्वतन्त्रो भवति, यथेच्छति तथा कुरुते, द्वितीयः आभ्यासिकः मितो भवेत् = परिमितः स्यात्। तृतीय औपदेशिकस्तु वल्गु = सुन्दरं फल्गु = निरर्थकम् जल्पति = ब्रूते। अतः पूर्वः पूर्वः श्रेयान् श्रेष्ठः इति सम्यक्। आत्मनो मतमुपस्थापयति **उत्कर्ष इति**। उत्कर्षः श्रेयान् = तेषु त्रिषु यत्रोत्कर्षः = अतिशयो भवति स एव श्रेयान् अतिप्रशस्त्यः ननु पूर्वपूर्वः। सः = उत्कर्षः अनेकगुणसन्निपाते = अनेकेषां गुणानां सन्निपाते = एकत्र संस्थाने एव भवति = जायते।

बुद्धिमत्त्वमिति। बुद्धिमत्त्वं = ज्ञातृत्वम्, काव्याङ्गविद्यासु = काव्येषु तथा तदङ्गभूतासु विद्यासु च अभ्यासकर्म = काव्यकरणाभ्यासः, कवेः = काव्यकर्तुः, उपनियच्छक्तिः = उपनिषद्रहस्यज्ञानपूर्विका शक्तिः। एतत्त्रयम् एकत्र = एकस्मिन् कवौ, दुर्लभम् = दुष्प्राप्यम् अस्तीति शेषः।

दूसरी क्रिया का प्रयोग किया जाय तो उससे द्विगुणित फल की प्राप्ति सम्भव है। आचार्य श्यामदेव का मत है कि उपर्युक्त कवियो में क्रमशः पूर्ववर्ती कवि श्रेष्ठ होता है। अर्थात् औपदेशिक की अपेक्षा आभ्यासिक और आभ्यासिक की अपेक्षा सारस्वत कवि श्रेष्ठ होता है।

सारस्वत कवि सर्वतंत्रस्वतंत्र होता है तथा आभ्यासिक कवि सीमित क्षेत्र में काव्यप्रतिभा का प्रदर्शन कर पाता है, किन्तु औपदेशिक कवि यद्यपि सुन्दर रचना करता है, परन्तु वह सारहीन होती है। यायावरीय का अभिमत है कि काव्यकर्म में उत्कर्ष अर्थात् सतत प्रगति करना ही श्रेयस्कर है, किन्तु वह उत्कर्ष अनेक गुणों के आधान द्वारा ही प्राप्त होता है।

बौद्धिक प्रतिभा, काव्यरचना के विविध अंगों = रस, छन्द, अलंकार इत्यादि में अभ्यास-जन्य कुशलता तथा कवियों की उपनिषत् शक्ति = काव्यत्व निर्माण की प्रतिभा इन तीनों का

काव्यकाव्याङ्गविद्यासु कृताभ्यासस्य धीमतः ।
मन्त्रानुष्ठाननिष्ठस्य नेदिष्ठा कविराजता ॥

कवीनां तारतम्यतश्चैष प्रायोवादः । यथा—

एकस्य तिष्ठति कवेर्गृह एव काव्य-
मन्यस्य गच्छति सुहृद्भुवनानि यावत् ।
न्यस्याविदग्धवदनेषु पदानि शश्वत्
कस्याऽपि सञ्चरति विश्वकुतूहलीव ॥

काव्यकाव्याङ्गविद्यासु = काव्ये काव्याङ्गभूतासु छन्दःकोशादिविद्यासु कृताभ्यासस्य = कृतः अभ्यासो येन सः तस्य कृताभ्यासस्य = विहितश्रमस्य, धीमतः = बुद्धिमतः, मन्त्रानुष्ठाननिष्ठस्य = मन्त्रस्य सारस्वतमन्त्रस्य अनुष्ठाने जपकर्मणि निष्ठा भक्तिर्यस्य सः तस्य कवेः, कविराजता = महाकविपदप्राप्तिः, नेदिष्ठा = नाति दूरे वर्तमाना भवति, किन्तु करतलगतेव जायत इति भावः । तस्मादुत्कर्षः प्रशंसनीय इति राजशेखरमतम् ।

एकस्येति—एकस्य = दुर्बुद्धेपकृष्टस्य औपदेशिकस्य कवेः काव्यकर्तुः काव्यं गृहे एव = स्वगेहे एव तिष्ठति = विराजते, नहि कश्चन तदादारबुद्धया पठति । तस्यापकृष्टत्वात् तत्प्रचारः प्रसारश्च न जायते । अन्यस्य आहार्यबुद्धेर्मध्यमस्य आभ्यासिकस्य कवेः काव्यं सुहृद्भुवनानि = मित्रगृहाणि यावत्=पर्यन्तं गच्छति = उपतिष्ठते, यतस्तत्काव्ये मित्रमात्रस्यानन्दो जायते नान्यस्य, किन्तु कस्यापि = उत्तमस्य बुद्धिमतः सारस्वतस्य कवेः काव्यं तु, अविदग्धवदनेषु = अविदग्धानां भावुकानां वदनेषु = आननेषु, पदानि = चरणान्, स्थानानि न्यस्य = आधाय, विश्वकुतूहलीव = विश्वस्य = जगतः कुतूहलीव = सकौतुकमिव, शश्वत् = निरन्तरम्, सञ्चरति =

एकत्रीकरण अत्यन्त दुर्लभ है । काव्य तथा काव्य की अंगभूत विद्याओं का अनुशीलन करने वाले तंत्र-मंत्रों के अनुष्ठान में लगे हुए विद्वान् के लिए कविराज का पद अप्राप्य नहीं होता है अर्थात् वह शीघ्र ही कविराज की उपाधि से विभूषित हो जाता है ।

श्रेष्ठ एवं निम्न श्रेणी के कवियों की काव्यरचना के तारतम्य को दृष्टिगत रखते हुए निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध है ।

किसी कवि विशेष=निम्न श्रेणी के कवि का काव्य उसके घर में ही रह जाता है, अर्थात् घर से बाहर प्रसिद्ध नहीं होता है, अन्य कवि = मध्यम श्रेणी का काव्य अपनी मित्र-मण्डली के घर तक ही पहुँच पाता है, किन्तु कुछ ऐसे भी कवि उत्तम श्रेणी के हैं, जिनका काव्य विद्वानों के मुख पर पैर रखकर (विद्वज्जनों की वाणी द्वारा प्रशंसा का पात्र बनकर)

सेयं कारयित्री । भावकस्योपकुर्वाणा भावयित्री । सा हि कवेः श्रममभिप्रायं च भावयति । तया खलु फलितः कवेर्व्यापारतरुः । अन्यथा सोऽवकेशी स्यात् 'कः पुनरनयोर्भेदो यत्कविर्भावयति भावकश्च कविः' इत्याचार्याः तदाहुः—

प्रतिभातारतम्येन प्रतिष्ठा भुवि भूरिधा ।
भावकस्तु कविः प्रायो न भजत्यधमां दशाम् ॥

रसास्वादनेन समेषां शिरो घूर्णयन् भ्रमति । एतादृशस्यैव कवेः काव्यस्य विस्तारो जायते सर्वत्रेति भावः ।

प्रस्तुतमुपसंहरति—**सेयमिति** पूर्वं निर्दिष्टेषु कविप्रभेदेषु प्रदर्शितप्रकारा प्रतिभा कारयित्रीति प्रसिद्धा । भावकस्य = भावयति काव्यार्थं सहृदयतया आस्वादयतीति भावकस्तस्य भावकस्य, सहृदयस्य, उपकुर्वाणा = उपकारिका भावयित्री । एतस्या उपयोगमाह—**सेति** । भावयित्री प्रतिभा हि कवेः = काव्यकर्तुः श्रमं = शब्दार्थसंयोजनात्मकं प्रयासम्, अभिप्रायं = मनोगतं भावम्, च भावयति = अवबोद्धुं प्रभवति, पर्यालोचयति, तया भावयित्र्या प्रतिभया कवेः व्यापारतरुः = व्यापाररचनास्वरूपः फलितो भवति । अन्यथा = भावयित्र्याः प्रतिभाया अभावे सः = कवेर्व्यापारतरुः, अवकेशी = निष्फलः, असफलः, स्यात् = भवेत् । परमतं दर्शयति—कः पुनरिति अनयोः = कविभावकयोः कः पुनर्भेदः, नास्ति कोऽपि भेद इति भावः, यतः कविरपि भावयति, भावकोऽपि कविः । इति आचार्याः प्राहुः । एतन्मतपोषकं पद्यमवतारयति ।

प्रतिभेति । भुवि = पृथिव्याम्, प्रतिभायाः तारतम्येन = न्यूनाधिक्येन,

---

मानों आश्चर्यान्वित होकर विश्व का भ्रमण करने निकल पड़ता है । इस श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि सारस्वत कवि का काव्य सर्वत्र लोक में प्रसिद्ध हो जाता है ।

उपर्युक्त वाक्यों में कवि की काव्यप्रतिभा का विवेचन किया गया है । आगे की पंक्तियो में भावक अर्थात् काव्य की आलोचना करने वाले का विवेचन किया जायेगा । भावक (आलोचना) का उपकार करने वाली प्रतिभा का नाम भावयित्री है । इस समालोचनात्मक भावयित्री प्रतिभा के बल पर ही कवि के परिश्रम तथा उसके काव्यगत अभिप्राय वैशिष्ट्य आदि का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है । इस समालोचना से ही कवि का श्रमरूपी वृक्ष फलित होता है । अर्थात् सार्थक सिद्ध होता है, कविता सिद्ध हो जाती है ।

किन्तु जब एक व्यक्ति में समालोचनात्मक एवं काव्यात्मक प्रतिभा निहित होती है तब उसमें कोई भेद नहीं रह जाता है । यदि कोई व्यक्ति कवि और आलोचक भी होता है, तो भेद समाप्त हो जाता है । ऐसा अनेक आचार्यों का मत है, क्योंकि कहा गया है—

संसार में प्रतिभा के आधार पर ही प्रतिष्ठा की उपलब्धि होती है । प्रायः समालोचना

'न' इति कालिदासः । पृथगेव हि कवित्वाद्भावकत्वं, भावकत्वाच्च कवित्वम् । स्वरूपभेदाच्च । यदाहुः—

कश्चिद्वाचं रचयितुमलं श्रोतुमेवापरस्तां
कल्याणी ते मतिरुभयथा विस्मयं नस्तनोति ।
न ह्येकस्मिन्नतिशयवतां सन्निपातो गुणाना-
मेकः सूते कनकमुपलस्तत्परीक्षाक्षमोऽन्यः ॥

भूरिधा = बहुप्रकारा, प्रतिष्ठा = आस्पदम्, भवति, भावकः = विचारशीलस्तु कविः प्रायः अधमां = निकृष्टाम्, दशाम् = अवस्थाम्, न भजति = न प्राप्नोति । एतन्मत-विरुद्धं कालिदासमतं प्रदर्शयति **नेति** । कविभावकयोर्भेदोऽस्तीति कालिदासमतं स्पष्टयति—**पृथगिति** । कवित्वाद्भावकत्वं भावकत्वाच्च कवित्वं पृथगेव, यः कवते = काव्यं करोति स कविः, यस्तु काव्यानुशीलनवशाद् वर्णनीययोग्यहृदयभाक् स भावक इति स्वरूपभेदमात्रम् । एकस्य शब्दार्थौ विषयः, अपरस्य रसास्वादो विषयः ।

कविभावकयोर्भेदमेव प्रमाणयति–**कश्चिदिति**, कश्चित् = कारयित्रीप्रतिभाविशिष्टः कविः वाचं = वाणीम्, शब्दरचनाम्, रचयितुं योजयितुम्, अलं = समर्थः, अपरः= भावयित्रीप्रतिभायुक्तः तां शब्दरचनात्मिकां वाणीं, श्रोतुं=आकर्णयितुं भावयितुमेव समर्थः, किन्तु ते = तव, महाकवेः, कल्याणी = शुभकरी, उभयथा=कारयित्र्यात्मक-प्रतिभाद्वयविशिष्टा मतिः = बुद्धिः, नः = अस्माकम्, विस्मयं = आश्चर्यम्, तनोति= विस्तारयति । हि = यतः, एकस्मिन् = पुरुषे, अतिशयवतां = सोत्कर्षाणाम्, गुणानाम् सन्निपातः = संघातः, न दृश्यते = नावलोक्यते । कुत इति चेत् तदाह— एकः उपलः = शालग्रामशिला, स्पर्शमणिर्वा, कनकं = सुवर्णम् । सूते = उत्पादयति, अन्यः = उपलः = निकषोपलः, तत्परिक्षाक्षमः = सुवर्णपरीक्षासमर्थः भवति ।

करने वाला यदि कविता करता है, तो उसे अधम दशा नहीं प्राप्त होती है, अर्थात् उसका काव्य लोक में यशस्वी होता है, परन्तु कालिदास का मत भिन्न है, क्योंकि काव्यसर्जन से आलोचना भिन्न है और आलोकत्व से कविता की रचना भिन्न है, यह भिन्नता स्वरूपगत तथा विषयगत होती है ।

कुछ व्यक्ति काव्यसृजन में सक्षम होते हैं, तथा कुछ लोग काव्यश्रवण में निपुण होते हैं, परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि तुम्हारी कल्याणी बुद्धि दोनों गुणों अर्थात् काव्य सृजन एवं उसके श्रवण में सक्षम हैं । एक ही में अनेक गुणों का प्रकटीकरण प्रायः नहीं दिखाई पड़ता है, क्योंकि एक प्रकार का पाषाण खण्ड (पारस पत्थर) यदि स्वर्ण को जन्म देता है, तो दूसरा (कसौटी) उक्त स्वर्ण की परीक्षा करता है ।

'ते च द्विधाऽरोचकिनः, सतृणाभ्यवहारिणश्च' इति मङ्गलः। 'कवयोऽपि भवन्ति' इति वामनीयाः। 'चतुर्धा' इति यायावरीयः मत्सरिणस्तत्त्वाभिनिवेशिनश्च। 'तत्र विवेकिनः पूर्वे तद्विपरीतास्तु ततोऽनन्तराः' इति वामनीयाः। 'अरोचकिता हि तेषां नैसर्गिकी, ज्ञानयोनिर्वा। नैसर्गिकीं हि संस्कारशतेनाऽपि वङ्गमिव कालिमानं ते न जहति। ज्ञानयोनौ तु तस्यां विशिष्टज्ञेयवति वचसि रोचकितावृत्तिरेव'

अथ भावकान् विभजते—ते चेति। ते भावका द्विविधाः—एके अरोचकिनः, अपरे सतृणाभ्यवहारिणः इत्याचार्यमङ्गलः प्राह। एवं भूताः कवयोऽपि भवन्ति वामनमतानुयायिनः। अयंभावः। न रोचयति प्रीणयतीति अरोचको नाम रोग-विशेषः स अस्ति येषां ते अरोचकिनः = अरोचकव्याधिशालिनः यथा अरोचके रोगे जाते स्वादिष्टेऽप्यन्ने रुचिर्न भवति जनानां तथैव एके अरोचकिनो भावकाः कवयोऽपि सरसेऽपि काव्ये तुच्छत्वप्रत्ययात् काव्ये नासाक्षिसंकोचादिकं कुर्वन्ति। यथा बुभुक्षितः स्थाल्यां परिवेषितं भोजनं प्रसन्नतया भुञ्जते तथैव सतृणं तृणमपरित्य अभ्यवहन्ति खादन्तीति सतृणाभ्यवहारिणः एषां भोजने तात्पर्यं, न तु मधुरामधुरविवेके सतृणाभ्यवहारिणोऽविवेचकाः भावकाः कवयः = छन्दोबद्धं यत् किमपि काव्यात्मना रचयन्तीति भावः। स्वमतं दर्शयति—चतुर्धेति। केचित् मत्सरिणः केचित्तत्त्वाभिनिवेशिनः = समालोचकाः इत्येतौ द्वौ द्वौ च पूर्वोक्तौ अरोचकिसतृणाभ्यवहारिणौ इति तेषां चातुर्विध्यमिति यायावरीयः। तत्र तेषां मध्ये पूर्वेऽरोचकिनः विवेकिनः, ततोऽनन्तराः सतृणाभ्यवहारिणोऽविवेकिनः इति वामनीयाः वामनमतानुयायिनः। ययावरीयं मतं विवृणोति—अरोचकतेति—तेषां भावककवीनामरोचकता नैसर्गिकी = स्वाभाविकी, ज्ञानयोनिः = ज्ञानकारणं वा, नैसागिक्या अरोचकतायाः सहस्रसंस्कारैरपि त्यागो न भवति यथा वंगस्य शोधन-मारणादिसंस्कारे कृतेऽपि मालिन्यं न निर्गच्छति तथैव स्वाभाविकारोचकताशालिनां

मंगल नामक आचार्य का अभिमत है कि आलोचकों के दो भेद—आरोचकी तथा सतृणाभ्यवहारी—होते हैं। ये दोनों भेद कवियों पर भी लागू होते हैं। ऐसा वामन के मयानुयायिओं का विचार है। मत्सरी तथा तत्त्वाभिनिवेशी इन दो को और जोड़कर आलोचकों के चार भेद हो जाते हैं, ऐसा यायावरीय का अभिमत है। वामनाचार्य के मतानुसार प्रथम दो विवेकी हैं तथा शेष दोनों सतृणाभ्यवहारी अविवेकी है। अरोचकता भी दो प्रकार की होती है—स्वाभाविक तथा ज्ञानयोनि। नैसर्गिक अरोचकता शत-शत संस्कारों के द्वारा भी अपनी प्रवृत्ति को ठीक उसी प्रकार नहीं छोड़ती, जैसे वङ्ग (जस्ता) धातु सैजड़ों शोधन के उपरान्त भी अपने रूप को नहीं छोड़ता है, किन्तु ज्ञानयुक्त

सैकड़ों

इति यायावरीयः। किञ्च सतृणाभ्यवहारिता सर्वसाधारणी। तथाहि—व्युत्पित्सोः कौतुकिनः सर्वस्य सर्वत्र प्रथमं सा। प्रतिभाविवेकविकलता हि न गुणागुणयोर्विभाग-सूत्रं पातयति। ततो बहु त्यजति बहु च गृह्णाति। विवेकानुसारेण हि बुद्धयो मधु निष्यन्दन्ते। परिणामे तु यथार्थदर्शी स्यात्। विभ्रमभ्रंशश्च निःश्रेयसं सन्निधत्ते। मत्सरिणस्तु प्रतिभातमपि न प्रतिभातं, परगुणेषु वाचंयमत्वात्। स पुनरमत्सरी ज्ञाता च विरलः। तदुक्तम्—

कस्त्वं भोः कविरस्मि काप्यभिनवा सूक्तिः सखे पठ्यतां
त्यक्ता काव्यकथैव सम्प्रति मया कस्मादिदं श्रूयताम्।

काव्ये समादृतेऽपि चेतसो न प्रत्ययो भवति। ज्ञानयौनौ = ज्ञानकरणीभूतायां तस्यामरोचकतायां तु विशिष्टप्रमेयवति वचसि वाक्ये रोचकताप्रवृत्तिः = प्रेमपूर्वक-व्यवहार एव तद् ग्रहणे मनसि प्रवृत्तिरुत्पद्यते एवेति राजशेखरमतम्। किञ्च सतृणाभ्यवहारिता सर्वसाधारणो = सर्वजनसमानाधिकरणा यतो हि सर्वस्य व्युत्पित्सोः सा प्रथममाश्रयजीवा भवति। यो हि प्रतिभाशून्यो भवति, स गुण-दोषयोर्भेदं कर्तुं न प्रभवति, विवेकेनैव बुद्धिः माधुर्यं वर्षति परिश्रमं चिन्तयति, सन्देहं विनाश्य कल्याणं कुरुते। मत्सरिणस्तु प्रतिभातमपि न प्रतिभातं भवति, यतो हि परगुणकथने स वाचं संयच्छते। निर्मत्सरः प्रतिभासम्पन्नमनुष्यो दुर्लभो भवति।

उक्तार्थे प्रवादुकपद्यमुदाहरति **कस्त्वमिति**—भो कस्त्वमिति प्रश्नः कविरस्मि

अरोचकिता, अर्थगौरव से युक्त काव्य के प्रति आकृष्ट होती है, यह यायावरीय का मत है।

कुतूहल से प्रेरित व्युत्पत्ति की इच्छा वाले आलोचकों को सतृणाभ्यवहारी बुद्धि सर्वत्र ही प्राप्त होती है। प्रतिभा तथा विवेचन से रहित बुद्धि गुण और दोष में विषय विभाजक रेखा खींचने में असमर्थ रहती है। ऐसी बुद्धि वाला आलोचक अनेक आवश्यक तत्त्वों का समावेश न कर अनपेक्षित तत्त्वों की बहुत आलोचना करता है। विवेक के अनुसार आलोचना करने पर बुद्धि मधु (आनन्द) की प्राप्ति होती है। काव्य तत्त्व की आलोचना में आलोचक को यथार्थ द्रष्टा होना चाहिए। भ्रम से युक्त होने पर ही परम कल्याण की उपलब्धि सम्भव होती है। ईर्ष्यालु आलोचक प्रत्यक्ष प्रतिभासित होने वाले गुणों को भी नहीं देख पाता है तथा दूसरों के गुणों के वर्णन प्रसंग में भी वह मौनावलम्बन धारण कर लेता है। पर गुणों की प्रशंसा में मौनावलम्बन के कारण ही आलोचक प्रत्यक्ष दिखायी पड़ने वाले गुणों को भी वह नहीं देख पाता है। काव्यतत्त्व का ज्ञाता, किन्तु ईर्ष्या-रहित समालोचक दुर्लभ है, कहा भी है—

आप कौन हैं ? 'मैं कवि हूँ'। तो मित्र ! किसी नूतन कविता का पाठ करो। मैंने

यः सम्यग्विविनक्ति दोषगुणयोः सारं स्वयं सत्कविः
सोऽस्मिन् भावक एव नास्त्यथ भवेद् दैवान्न निर्मत्सरः ॥
तत्त्वाभिनिवेशी तु मध्येसहस्रं यद्येकस्तदुक्तम्—
शब्दानां विविनक्ति गुम्फनविधीनामोदते सूक्तिभिः
सान्द्रं लेढि रसामृतं विचिनुते तात्पर्यमुद्रां च यः ।
पुण्यैः सङ्घटते विवेक्तृविरहादन्तर्मुखं ताम्यतां
केषामेव कदाचिदेव सुधियां काव्यश्रमज्ञो जनः ॥

इति उत्तरम् । हे सखे ! कापि = अनिर्वचनीया, रसभावभरिता अभिनवा = अनालोचितपूर्वा सूक्तिः = मधुरार्थमयं काव्य पठ्यतां = निगद्यताम् । उत्तरयति- मया सम्प्रति = इदानीम्, काव्यकथैव = काव्यचर्चैव, त्यक्ता = परित्यक्ता, इदं = काव्यकथापरित्यजनं कस्मात् (इति प्रश्नः) श्रूयतामिति उत्तरम् । यः स्वयं सत्कविः सन् दोषगुणयोः दोषश्च गुणश्च दोषगुणौ तयोः दोषगुणयोः सारं सम्यक् विविनक्ति = निर्धारयति । स = एवंविधो भावकः अस्मिन् जगति, नास्त्येव । अथ दैवात् = कदाचित् भवेत् = संभवेत् तदा निर्मत्सरः = परगुणोत्कर्षसहिष्णुर्नास्ति । एकस्मिन् जने कवित्वं भावकत्वं चोभयं दुर्लभम् । तत्त्वे वस्तुयाथार्थ्ये अभिनिवेशः आग्रहो यस्य स तत्त्वभिनिवेशी = समालोचकः मध्ये सहस्रं = सहस्राणां जनानां मध्ये कश्चिदेक एव भवति ।

एतदेव दर्शयति—**शब्दानामिति** । यः शब्दानां = वाचकानाम्, गुम्फनविधीन्= गद्ये पद्ये वा संयोजनप्रकारान्, विवनक्ति=विचारयति, इदृक्शब्दविन्यासेनात्रेदृशश्च- मत्कारः सम्भवति, एतादृशशब्दत्यागेनायं चमत्कारो न भवितुमर्हतीत्यादिकं शब्द- विन्यासप्रकारं सम्यग् विवेचयति, सूक्तिभिः = शोभनवचनैः, आमोदते = हृष्यति, रसामृतम्, सान्द्रं = निविडं यथा स्यात्तथा लेढि = आस्वादयति तथा तात्पर्यमुद्रां=

अब कविता की चर्चा करना ही बन्द कर दी है ।

ऐसा क्यो ? सुनें, जो व्यक्ति काव्यगत समस्त गुणदोषों का सम्यक् विवेचन करता हो तथा सुन्दर काव्यरचना भी करता हो, ऐसा कोई भी समालोचक नहीं होता है, यदि भाग्य- वश ऐसा कोई हो भी तो वह ईर्ष्या दोष से परे नहीं हो सकता है ।

तत्त्वाभिनिवेशी आलोचक सहस्रों में कहीं एक ही होता है । इस सम्बन्ध में कथन है कि—

शब्दों की गुम्फन विधि, विवेचन करने वाले काव्य सूक्तियों से प्रसन्न होने वाले, काव्य के रसामृत का पान करने वाले, काव्यगत वैशिष्ट्य के गम्भीर तत्त्वों का विवेचन करने वाले तथा सुधीजनों के काव्य निर्माण ये कृतपरिश्रम का मूल्यांकन करने वाले

स्वामी मित्रं च मन्त्री च शिष्यश्चाचार्य एव च।
कवेर्भवति ही चित्रं किं हि तद्यन्न भावकः॥
काव्येन किं कवेस्तस्य तन्मनोमात्रवृत्तिना।
नीयन्ते भावकैर्यस्य न निबन्धा दिशा दश॥

कविना केन तात्पर्येण किमर्थबोधनेच्छया आत्रास्य पदस्य निवेशः कृत इति रूपां कवितात्पर्यमुद्राम्। विचिनुते = विचारयति, एतादृशः काव्यश्रमज्ञः = काव्यस्य श्रमं जानातीति काव्यश्रमज्ञः जनः विवेक्तृविरहाद् विदेक्तुर्विरहस्तस्मात् = विवेचकाभावात् = परिज्ञातृदौर्लभ्यात्। मुखस्यान्तः अन्तर्मुखम्, मुखाभ्यन्तम्, ताम्यतां = खेदमनुभवताम्, केषामेव = केषाञ्चिदेव, सुधियां = नतु समेषाम्, कदाचिदेव, नतु सर्वदा, पुण्यैः = सुकृतैः, संघटते = लब्धो भवति।

स्वामीति। भावकः काव्यभावनापरिक्वबुद्धिः, आलोचकः, कवेः = काव्यनिर्मातुः, कृते दोषाच्छादकत्वात् स्वामी, गुणप्रख्यापनै रुपकरित्वात् मित्रं सुहृत्, धीसाचिव्यकरणात् मन्त्री = परामर्शदाताऽमात्यः, जिज्ञासिवत्वात्, काव्यपठनाच्च शिष्यः = अन्तेवासी, गुणापादान-दोषहानद्युपदेशकत्वात् आचार्यः = गुरुश्च भवति किं तद्धि यत् कवेर्न भवति हि चित्रम् = आश्चर्यम्। इत्थं भावकः कवेः कृते सर्वं भवतीत्पर्थः।

काव्येनेति। तन्मनोमात्रवृत्तिना=तस्य कवेः मनोमात्रे चेतसि वृत्तिना, मनस्येव तिष्ठता, काव्यने तस्य कवेः = कवयितुः, किं = किं फलम्? व्यर्थमेव न किमपि प्रयोजनमिति भावः। भावकैः = आलोचकैः, यस्य निवन्धाः रचनाः दश दिशः = दशसु दिक्षु, सर्वत्र, न नीयन्ते = न श्लाघ्यन्ते, नवा प्राप्यन्ते। तस्य काव्यमेव व्यर्थमित्यर्थः।

समालोचक की प्राप्ति बुद्धिमान् व्यक्ति के महान् पुण्यों के द्वारा ही होती है। इस प्रकार के समालोचक के अभाव में कवि मन में ही दुखी रहता है।

काव्यभावना परिपक्वबुद्धि भावक, कवि का स्वामी, सखा, परामर्शदाता, शिष्य तथा आचार्य सब कुछ होता है। आश्चर्य का विषय है कि कवि का कोई भावक न हो।

अर्थात् दोषापवाद की रक्षा करने के कारण स्वामी, सभा में गुण प्रकट करने से उपकारी मित्र, सद्बुद्धि देने के कारण मंत्री, जिज्ञासा के कारण शिष्य और गुण-दोष का उपदेश देने के कारण भावक कवि का सब कुछ होता है।

जिस कवि का काव्य उसी तक ही सीमित रह जात है, वह काव्य व्यर्थ है, क्योकि उससे किसी को कोई लाभ नहीं, वही सार्थक काव्य है जो समालोचकों द्वारा दशों दिशाओं में प्रसिद्ध कर दिया जाय। अन्यथा वह अप्रसिद्ध काव्य व्यर्थ ही हैं।

सन्ति पुस्तकविन्यस्ताः काव्यबन्धा गृहे गृहे ।
द्वित्रास्तु भावकमनःशिलापट्टनिकुट्टिताः ॥
सत्काव्ये विक्रियाः काश्चिद्भावकस्योल्लसन्ति ताः ।
सर्वाभिनयनिर्णीतौ दृष्टा नाटचसृजा न याः ॥
वाग्भावको भवेत् कश्चित् कश्चिद् धृदयभावकः ।
सात्त्विकैराङ्गिकैः कश्चिदनुभावैश्च भावकः ॥
गुणादानपरः कश्चिद् दोषादानपरोऽपरः ।
गुणदोषाहृतित्यागपरः कश्चन भावकः ॥

सन्तीति । पुस्तकविन्यस्ताः = पुस्तकेषु लिखिताः लिपिरूपेण स्थिताः, काव्यबन्धाः = प्रबन्धाः गृहे गृहे=प्रतिगृहं, सन्ति = वर्तन्ते, भावकमनःशिलापट्टनिकुट्टिताः =भावकानां मन एव शिलापट्टं=निकषोपलं तस्मिन् निकुट्टिताः=खचिता, वाः द्वित्राः =द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः=विरलाः एव न तु बहवः, ये भावकैः समादर्तव्याः स्युः ।

सत्काव्ये । सत्काव्ये = उत्तमे काव्ये पठिते सति भावुकस्य सहृदयस्यालोचकस्य हृदये ताः = तादृश्यः, काश्चित्=अनिर्वचनीया, अत्यन्तं निभृताः काश्चन विक्रियाः= विकाराः उल्लसन्ति = स्फुरन्ति, प्रादुर्भवन्ति, याः=यादृश्यो विक्रियाः, नाट्यसृजा= नाटचं सृजतीति नाटचसृक्तेन नाटचसृजापि, नाट्याचार्येण भरतेन मुनिनापि सर्वाभिनयनिर्णीतौ आङ्गिकादि-सर्वविधाभिनयनिर्णयावसरे न, दृष्टाः न पर्यालोचिताः ।

अथ भावकानां वैविध्यं दर्शयति—वाग्भावक इति । कश्चिदालोचकः = वाग्भावकः = शब्दगुम्फनविधिपरामर्शकः कवेः शब्दसौन्दर्यमेवालोचयितुं प्रभवति, तथा कश्चित् हृदयभावकः = कवेः काव्यमाकर्ण्येदं कविहृदयमिति विचारयितुं प्रभवति, कश्चिद् भावकः न वचसा किमपि कथयति, किन्तु सात्त्विकैः आङ्गिकैः अनुभावैश्च आङ्गिकसात्त्विकानुभावान् प्रदर्श्य हृद्गतमुल्लासं प्रकटयति—गुणादानपर इति ।

अनेक काव्य-ग्रन्थ पुस्तक के रूप में घर-घर रखे हैं, परन्तु आलोचकों के हृदय के शिला-पटल पर दो-तीन काव्य ही अंकित हैं ।

सत्काव्य के अध्ययन के समय आलोचक के मन में जो भाव-विकार उठते हैं, उनका दिग्दर्शन नाट्यशास्त्र के जन्मदाता (ब्रह्मा) नाट्याचार्य भरतमुनि भी अभिनयों के निर्णय प्रसंग में नहीं कर सके ।

कोई समालोचक कवि की वाणी = शब्दावली की आलोचना करता है, किन्तु कोई कविता के हृदयपक्ष की आलोचना करता है । इसके विपरीत कुछ आलोचक सात्विक भाव, आंगिक भाव तथा अनुभावों के द्वारा काव्य की आलोचना करते हैं ।

यदि कुछ आलोचक केवल काव्यगत गुणों की ही समीक्षा करते हैं, तो कुछ केवल

अभियोगे समानेऽपि विचित्रो यदयं क्रमः ।
तेन विद्मः प्रसादेऽत्र नृणां हेतुरमानुषः ॥
न निसर्गकविः शास्त्रे न क्षुण्णः कवते च यः ।
विडम्बयति सात्मानमाग्रहग्रहिलः किल ॥
कवित्वं न स्थितं यस्य काव्ये च कृतकौतुकः ।
तस्य सिद्धिः सरस्वत्यास्तन्त्रमन्त्रप्रयोगतः ॥

कश्चिद् भावकः = गुणादानपरः = गुणग्राही, अपरः = कश्चिद् दोषादानपरः = दोषप्रदर्शकः, कश्चन च भावकः, गुणदोषाहृतित्यागपरः = गुणादानपूर्वकं दोषदानपरो भवति ।

भावकानां वैविध्ये हेतुं प्रदर्शयति—अभियोगपर इति । अभियोगे=अभिनिवेशे आलोचनाविषये काव्ये, समाने = तुल्येऽपि यदयं क्रमः विचित्रः = यदयं प्रसन्नताहेतुर्भिन्नः अन्यप्रकारकः, तेन विद्मः = जानीमः, अत्र = काव्यालोचने, प्रसादे = प्रसन्नताविषये, नृणां = जनानाम्, हेतुः = अमानुषः = अलौकिकः वर्तते । अतः केनचिद्दोषे दृष्टिर्दीयते, कस्यचिद् गुणे न निसर्गेति पक्षपातः, कोऽपि रसे भावावेशी, कस्यचिदलङ्कारविषयिणी धारणा ।

न निसर्गेति । यः निसर्गकविः = स्वाभाविकः कविर्न वर्तते, तथा शास्त्रे = विविधासु विद्यासु न क्षुण्णः = न श्रान्तो जातः । आग्रहग्रहिलः = हठयुक्तः स यदि कवते = कवितां करोति तर्हि आत्मानमेव = स्वमेव विडम्बयति = प्रतारयति । अयं भावः—यस्य प्राक्तनं वासनाख्यं प्रतिभानं नास्ति, नापि श्रुतं निर्मलं विद्यते, स हठी आत्मानं वञ्चयति ।

कथं तर्हि तस्य कवित्वप्राप्तिरित्याह—कवित्वमिति । यस्मिन् कवित्वं—कविताशक्तिः न स्थितं = नास्ति, तथा काव्ये = काव्यरचनाविषये, कृतकौतुकः = कुतूहली, अस्ति, तर्हि तस्य = तादृशस्य जनस्य सरस्वत्याः = वाग्देवतायाः, तन्त्रमन्त्रप्रयोगतः = तन्त्रमन्त्रप्रयोगद्वारासिद्धिः = सफलता, काव्यनिर्माणसफलता

दोषदर्शन ही करते हैं, परन्तु कुछ आलोचक दोषों का त्याग कर गुणों को ग्रहण करते हैं।

एक ही जैसे काव्यों की आलोचनायें भिन्न भिन्न होती हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि मनुष्यों को किसी अलौकिक तत्त्व से आनन्द की प्राप्ति होती है।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जो व्यक्ति न तो जन्मजात कवि है, और न शास्त्रों में ही निष्णात है, फिर भी कविता करता है, वह हठ का ही प्रदर्शन करता हुआ अपनी अवमानना ही करता है।

जिस व्यक्ति में यद्यपि कवित्व शक्ति नहीं है, फिर भी कविता करने के लिए मन में

यदान्तरं वेत्ति सुधीः स्ववाक्यपरवाक्ययोः ।
तदा स सिद्धो मन्तव्यः, कुकविः कपिरेव वा ॥
कारयित्री-भावयित्र्याविती मे प्रतिभाभिदे ।
अथातः कथयिष्यामो व्युत्पत्तिं काव्यमातरम् ॥

इति कविराजशेखरकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे शिष्यप्रतिभाव्याख्याननामकः चतुर्थोऽध्यायः ॥



भवितुमर्हति । एवं च प्राक्तनवासनाया अभावेऽपि काव्यं कर्तुमीहमानस्य सरस्वती-प्रासादादेव साफल्यं सम्भवति ।

यदान्तरमिति । यदा सुधीः = विद्वान्, स्ववाक्यपरवाक्येषु = स्वनिर्मितपर-प्रणीतश्लोकेषु स्थितानां पदानामन्तरं = विभेदं वेत्ति = जानाति तदा = तदानीं स सिद्धः = सत्कविः, मन्तव्यः = ज्ञेयः, अन्यथा कवयिता कुकविः = कुत्सितकविः, वा-अथवा, कपिरेव = कपितुल्य एव । यथा कुकविः चपलतया जडतया वा स्वपर-कृत्यविचारविमूढो भवति तथैव स्वपरवचनान्तःपाति = पदान्तरवेदनानभिज्ञः कविः कपितुल्यो भवति ।

अथ प्रदर्शितमुपसंहरति—कारयित्रीति । इति = इत्थम्, पूर्वोक्तप्रकारेण इमे= एते, कारयित्री-भावयित्र्यौ प्रतिभायाः भिदे = भेदौ निरूपिते = प्रपञ्चिते । अथ = अनन्तरम्, यतो व्युत्पत्तिः = व्याकरणम्, अतो मातृवदुपजीव्यां तां व्युत्पत्तिम् अग्रिमेऽध्याये कथयिष्यामः = वक्ष्यामः निरूपयिष्यामीत्यर्थः ।

इति श्रीमुखशण्डिल्यगोत्रजन्मना डॉ० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना
कृतायां काव्यमीमांसाव्याख्यायां विमलाख्यायां
शिष्यप्रतिभाव्याख्यानश्चतुर्थोऽध्यायः ।

सकता है, उसको काव्य की सिद्धि सरस्वती के तन्त्र-मन्त्र के अनुष्ठान द्वारा ही हो सकती है ।

जिस बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने तथा पराये वाक्यों में अन्तर प्रतीत होने लगता है, वह चाहे सुकवि हो अथवा कुकवि उसे सिद्धकवि मानना चाहिए ।

प्रस्तुत प्रकरण में कारयित्री तथा भावयित्री प्रतिभा के भेदों का निरूपण किया गया है । अब अग्रिम अध्याय में काव्य को जन्म देनेवाली व्युत्पत्ति का वर्णन किया जायेगा ।

इस प्रकार कविराजशेखरकृत काव्यमीमांसा के कविरहस्यनामक प्रथम
अधिकरण शिष्यप्रतिभाव्याख्याननामक चतुर्थ अध्याय पर पण्डित
श्रीकृष्णमणित्रिपाठी द्वारा की गयी सुधा व्याख्या समाप्त ।



अथ पञ्चमोऽध्यायः

व्युत्पत्तिकविपाकाः ५

'बहुज्ञता व्युत्पत्तिः' इत्याचार्याः । सर्वतोदिक्का हि कविवाचः । तदुक्तम्—

प्रसरति किमपि कथञ्चन नाभ्यस्ते गोचरे वचः कस्य ।
इदमेव तत्कवित्वं यद्वाचः सर्वतोदिक्काः ॥

अथ प्रसङ्गसङ्गत्या सूत्रमवतारयति व्युत्पत्तिकविविपाका इति । व्युत्पत्ति कविश्च विपाकश्च व्युत्पत्तिकविविपाका भाष्योदाहरणद्वारा व्याख्यास्यन्ते इति सू तात्पर्यम् ।

अथ प्रतिज्ञातां व्युत्पत्तिं प्रदर्शयितुमुपक्रमते—**बहुज्ञतेति** । बहुशास्त्रपरिशील ज्ञानशालिता व्युत्पत्तिरस्तीति आचार्याणामभिप्रायः । हि = यतः, कविवाचः = कवीनामुक्तयः, सर्वदिक्काः = सर्वासु दिक्षु गमनशीलाः, सर्वविषयवर्णनकारिण्य भवन्तीत्यभिप्रायः ।

प्रकृतोपपादकं पद्यमुदाहरति—**प्रसरतीति** । अभ्यस्ते = पुनः पुनः परिशीलि गोचरे = विषये, कथञ्चन = कृच्छ्रात्, किमपि वक्तुं, कस्य = जनस्य, वचः = वाणी न प्रसरति = अपितु सर्वस्य प्रचलत्येव यद्वा येन केनापि विधिना न प्रसर किम् किन्तु प्रसरत्येवेति काकुः । तत् = प्रसिद्धम्, कवित्वम्, कविभावः, इदमेव = एतदेव, यद् वाचः = कविवचनानि, सर्वतोदिक्काः = सर्वदिक्प्रसरणशीलाः स्युः बहुज्ञतयैव बहुविषयवर्णनसामर्थ्यं सम्पद्यते । अतो बहुज्ञता विस्तीर्णा सती व्युत्पत्ति

अब इस पञ्चम अध्याय में काव्यजननी व्युत्पत्ति के निरूपण प्रसंग से व्युत्प कवि और पाक का वर्णन किया जायेगा । जिसका प्रथम सूत्र है—व्युत्पत्तिकविपाकाः । अ आचार्यों का अभिमत है कि बहुज्ञाता ही व्युत्पत्ति है । अर्थात् शास्त्र के अध्ययन-मनन लोकव्यवहार के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा उत्पन्न अनुभव ही बहुज्ञाता है, क्योंकि कवि वाणी का विस्तार सभी दिशाओं में होता है । अर्थात् सभी प्रकार के शास्त्र विद्यायें क कौशल एवं सामाजिक व्यवहार आदि सभी कवि कर्म का विषय होता है ।

पूर्व अभ्यस्त विषयों में प्रत्येक की वाणी कुछ न कुछ कह सकने में तो समर्थ हो जाती है । अतः पूर्वज्ञात अथवा अज्ञात सभी प्रकार के विषयों में स्फुटित होने वाली का प्रतिभा ही कवित्व है ।

'उचितानुचितविवेको व्युत्पत्तिः' इति यायावरीयः । 'प्रतिभाव्युत्पत्त्योः प्रतिभा श्रेयसी' इत्यानन्दः । सा हि कवेरव्युत्पत्तिकृतं दोषमशेषमाच्छादयति । तदाह—

अव्युत्पत्तिकृतो दोषः शक्त्या संव्रियते कवेः ।
यस्त्वशक्तिकृतस्तस्य झगित्येवावभासते ॥

शक्तिशब्दश्चायमुपचरितः प्रतिभाने वर्त्तते । प्रतिभा यथा—

एतत् किं शिरसि स्थितं मम पितुः, खण्डं सुधाजन्मनो
लालाटं किमिदं विलोचनमिदं हस्तेऽस्य किं पन्नगाः ।

रित्याचार्याणामस्ति तात्पर्यम् । व्युत्पत्तिस्वरूपं यथा[1]—

स्वमतेन व्युत्पत्तिं लक्षयति—उचितेति । उचितानुचितविवेकः = युक्तायुक्त-विचारः, व्युत्पत्तिरिति यायावरकुलोत्पन्नो राजशेखरः । प्रतिभाव्युत्पत्त्योः प्रतिभा-श्रेयसी, हि = यतः सा प्रतिभा, कवेः=काव्यकर्तुः, अव्युत्पत्तिकृतं=अनिपुणताजन्यम्, अशेषं = सकलं दोषम् आच्छादयति = संवृणोतीत्यानन्दवर्द्धनाचार्यः । प्रकृतसाधकं पद्यमुदाहरति—अव्युत्पत्तिकृत इति । अव्युत्पत्तिकृतः = अव्युत्पत्तिजन्यः दोषः शक्त्या = प्रतिभया, संव्रियते = आच्छाद्यते, यस्तु दोषः तस्य = कवेः अशक्तिकृतः स झगित्येव = झटित्येव, शीघ्रमेव, अवभासते = प्रतीयते ।

ननु प्रतिभां प्रस्तूय किमिति शक्त्येति अप्रस्तुतमुच्यत इति सन्दिहानं प्रति समाधत्ते—शक्तीति । अयं श्लोके प्रयुक्तः शक्तिशब्दः प्रतिभाने प्रतिभायां गुणचरितः लक्षणया वर्तते । प्रतिभामुदाहृत्य दर्शयति—एतत्किमिति । कुमारः = कार्तिकेयः

उचित तथा अनुचित का विवेक करना ही व्युत्पत्ति है, ऐसा यायावरीय का मत है। ध्वनिकार—आनन्दवर्धन के मत में प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति में प्रतिभा श्रेष्ठ होती है, क्योंकि वह कवि की प्रतिभा अव्युत्पत्तिजन्य दोष को पूर्णतया ढक लेती है।

कवि की अव्युत्पत्ति से उत्पन्न होने वाला दोष उसकी काव्यप्रतिभा (शक्ति) से छिप जाता है, किन्तु प्रतिभा (शक्ति) हीनता से उत्पन्न दोष शीघ्र ही परिलक्षित होने लगता है।

यहाँ पर शक्ति शब्द औपचारिक रूप से प्रतिभा के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। प्रतिभा का उदाहरण निम्न है—

(प्रस्तुत श्लोक में पार्वती और उनके पुत्र कुमार=कार्तिकेय के बीच संवाद का वर्णन किया गया है)—कुमार कार्तिकेय ने पूछा—मातः ? हमारे पिताजी के शिर पर यह क्या है ?

---

१. छन्दो व्याकरणकलालोकस्थिति पद पदार्थविज्ञानम् ।
युक्तायुक्तविवेको व्युत्पत्तिरियं समासेन ॥

इत्थं क्रौञ्चरिपोः क्रमादुपगते दिग्वाससः शूलिनः
प्रश्ने वामकरोपरोधसुभगं देव्याः स्मितं पातु वः ॥

'व्युत्पत्तिः श्रेयसी' इति मङ्गलः । सा हि कवेरशक्तिकृतं दोषमशेषमाच्छादयति । तथा हि—

दिग्वाससं भगवन्तं शिवं दृष्ट्वा निजजननीं पृच्छति—हे मातः = अयि अम्ब ! मम पितुः = जनकस्य, शिरसि = मस्तके, एतत् = इदम्, किं स्थितम् वर्तमानमस्ति ? (सा उत्तरयति) सुधाजन्मनः = सुधासूतेः, चन्द्रमसः खण्डम् = कला, (पुनः प्रश्नः) इदं लालाटं = ललाटे स्थितं किम् ? (उत्तरम्) इदं विलोचनम् = तृतीयं नेत्रम् (पुनः प्रश्नः) अस्य=मम पितुः हस्ते = करे इदं किं ? (उ०) पन्नगाः=सर्पाः। इत्थम् = अनेन प्रकारेण क्रौञ्चरिपोः = क्रौञ्चपर्वतशत्रोः गुहस्य दिग्वाससः = दिगम्बरस्य शूलिनः = भगवतः शिवस्य विषये, क्रमात् = क्रमशः प्रश्ने = जिज्ञासायाम् । उपगते = शिरस्तः कटिपर्यन्तम् उपस्थिते सति, वामकरोपरोधसुभगं = वामकरेण वामहस्तेन य उपरोधः = स्वमुखाच्छादनम् तेन सुभगं मनोहरं यथास्यात्तथा देव्याः = पार्वत्याः स्मितं = किञ्चिद्धास्यम् वः = युष्माकं पातु = रक्षतु । अथवा शिरस्तः कटिपर्यन्तं क्रौञ्चरिपोः प्रश्ने समुपागते, अग्रे कदाचित् पुंव्यञ्जनविषये प्रश्नं मा कुर्यादिति बुद्धया तस्य मुखाच्छादनं शूलिना कृतं ततोदेव्या हसितम् ।

प्रतिभापेक्षया व्युत्पत्तेः श्रेष्ठत्वं प्रतिपादयति—व्युत्पत्तिरिति । प्रतिभापेक्षया व्युत्पत्तिर्निपुणता श्रेयसी = सातिशयेति मङ्गलमतम्, सा = व्युत्पत्तिः कवेरशक्ति-

---

(उत्तर)-चन्द्रमा का टुकड़ा अर्थात् चन्द्रमा है। (पुनः प्रश्न)-ललाट पर यह क्या है ? (उत्तर)—यह तृतीय नेत्र है। (फिर प्रश्न)-इनके हाथ में यह क्या है ? (उत्तर)-साँप हैं। इस प्रकार दिगम्बर (नग्न) शंकरजी के शरीरसम्बन्धी अवयवों की जानकारी हेतु बार-बार (क्रौञ्चरिपु) कार्त्तिकेय के प्रश्न करते रहने पर शायद वह किसी गोपनीय अंग के सम्बन्ध में प्रश्न कर बैठे, इस आशङ्का से देवी पार्वती ने अपने बायें हाथ से उस बालक का मुँह बन्द कर लिया और मुस्कराने लगीं। या नग्न शङ्कर जी ने बालक का मुख ढक दिया। पार्वती भगवान् शिव जी का आशय समझकर हँसने लगीं। अतः देवी पार्वती का यह हास आप लोगों की रक्षा करे।

(उपर्युक्त श्लोक में प्रतिभा के बल से कवि ने अश्लीलत्व सम्बन्धी अनुचित प्रश्न की ओर से पाठकों का ध्यान अलग कर दिया है।)

आचार्य मंगल का मत है कि प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति में व्युत्पत्ति ही श्रेयस्कर है।

कवेः संव्रियतेऽशक्तिर्व्युत्पत्त्या काव्यवर्त्मनि ।
वैदग्धीचित्तचित्तानां हेया शब्दस्य गुम्फना ॥

व्युत्पत्तिर्यथा—कृतः कण्ठे निष्को नहि किमुत तन्वी मणिलता
कृशं लीलापत्रं श्रवसि निहितं कुण्डलमुचि ।
न कौशेयं चित्रं वसनमवदातं तु वसितं
समासन्नीभूते निधुवनविलासे वनितया ॥

कृतं समस्तं दोषमाच्छादयति ।

कवेति । काव्यवर्त्मनि = काव्यमार्गे, काव्यरचनाकर्मणि व्युत्पत्त्या कवेः अशक्तिः = प्रतिभाहीनताजन्यसामर्थ्यम् । संव्रियते = तिरोधीयते । यतः वैदग्धी-चित्तचित्तानां = वैदग्ध्या काव्यास्वादपरया प्रतिभया व्याप्तानि चित्तानि अन्तः-करणानि येषां ते तेषाम् शब्दस्य गुम्फना = शब्दार्थयोजना हेया = अनादरणीया ।

अशक्तिदोषनिवारिका व्युत्पत्तिर्यथा—कृतः कण्ठे निष्क इति । चिरप्रवासात् पति गृहागतं निशम्य सञ्जातरागाया वासकसज्जाया वर्णनमिदम्—निधुवन-विलासे = अनङ्गोत्सवविधौ, सुरतव्यापारे, समासन्नीभूते = समीपमागते वनितया = प्रियसमागमोत्कण्ठितया नायिकया, कण्ठे = गलप्रदेशे निष्कः = सौभाग्यसूचकः सुवर्णाभरणविशेषः अपि नहि कृतः = न धारितः र्वाह तन्वी = सूक्ष्मा मणिलता = मणिमाला धार्येत किमुत = किं वक्तव्यम्, निष्कधारणस्य वार्ता तु दूरे तिष्ठतु । आलिङ्गनव्यवधानकारित्वात्तन्वी मणिमालापि हृदये न धारिता । कुण्डलं मुञ्चतीति कुण्डलमुक् तस्मिन् कुण्डलमुचि = कुण्डलविरहिते, श्रवसि = कर्णे, कृशम् = अतिसूक्ष्मम्, लीलापत्रं = पत्रपुष्पनिर्मितं कर्णाभरणम्, निहितं = कृतम्, चित्रं = नानावर्णं कर्बुरम्, कौशेयं = कृमिकोशोत्थं क्षौमम्, वसनं=अंशुकं, शाटिका, न वसितं = नहि धृतम्, अपितु अवदातं = धवलं, सितम्, वसनं = वस्त्रम्, वसितं = परिधृतम् । पद्यमिदमशक्तिजन्यदोषसम्वारिकाया व्युत्पत्तेरुदाहरणम् । वासक-

---

क्योंकि काव्यरचना के प्रसंग से व्युत्पत्ति, प्रतिभारहित कवि के अशक्तिजन्य दोषों को आच्छादित कर देती है । उक्त कवि की विदग्धता (व्युत्पत्ति से उत्पन्न काव्य चातुरी) से श्रोता मुग्ध हो जाते हैं और शब्दविन्यास की उपेक्षा कर देते हैं । व्युत्पत्ति का उदाहरण निम्नलिखित है—

सम्भोग के लिए तत्पर किसी नायिका ने गले में निष्क (कण्ठहार) नहीं धारण किया, तो पतली मणिमाला की बात ही क्या ! कानों से भारी कुण्डलों को हटाकर हल्के लीलापत्र (विशेष प्रकार के कर्णाभूषण) धारण कर लिये । सुन्दर रङ्ग-विरङ्गी रेशमी

'प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथः समवेते श्रेयस्यौ' इति यायावरीयः। न खलु लावण्यलाभादृते रूपसम्पदृते रूपसम्पदो वा लावण्यलब्धिर्महते सौन्दर्याय। उभययोगो यथा—

जङ्घाकाण्डोरुनालो नखकिरणलसत्केसरालीकरालः
प्रत्यग्रालक्तकाभाप्रसरकिसलयो मञ्जुमञ्जीरभृङ्गः।
भर्तुर्नृत्यानुकारे जयति निजतनुस्वच्छलावण्यवापी-
सम्भूताम्भोजशोभां विदधदभिनवो दण्डपादो भवान्याः॥

सज्जाया नायिकाया संभोगशृंगारवर्णने तदुचितकोमलवर्णाय न्यासो योग्यः, अन्यथा तत्पुष्टिर्न भवेत्।

विषयेऽस्मिन् नैजं मतं प्रदर्शयति—प्रतिभेति। प्रतिभा च व्युत्पत्तिश्चेति प्रतिभाव्युत्पत्ती मिथः = परस्परसमेवेते संगते श्रेयस्यौ = प्रशस्यतरे भवतः, सातिशये प्रतिभा व्युत्पत्ती आत्मनि समवायेन वर्तेते इति यायावरगोत्रीयो राजशेखरः। स्वमतं लौकिकदृष्टान्तेन समर्थयति न खल्विति लावण्यलाभमन्तरा न रूपसम्पदमहते सौन्दर्याय, अथवा रूपसम्पदं विना लावण्यं न महते सन्दर्याय सम्पद्यते। अतो न केवलया प्रतिभया न वा केवलया व्युत्पत्त्या काव्ये लावण्यमाधातुं शक्यते, किन्तु प्रतिभाव्युत्पत्त्योरुभयोः सङ्गमेन सम्भवति।

प्रतिभाव्युत्पत्त्योः योगमुदाहरति—जङ्घेति। बाणभट्टनिर्मिते चण्डीशतके। सन्ध्यासमये नृत्यन्तं भवमभिवीक्ष्यानुकरणपराया भावन्याश्चरणारविन्दवर्णनपरमेतत् पद्यम्। भर्तुः = पत्युः महेश्वरस्य नृत्तानुकारे=नर्तनानुकरणे भवान्याः=भवभार्यायाः पार्वत्याः, अभिनवः = इदं प्रथमतया प्रवृत्तः, दण्डपादः = ऊर्ध्वं क्षिप्तः चरणः, जयति = सर्वोत्कर्षेण वर्तते। किंभूतः, निजा = स्वकीया या तनुः = शरीरं सैव स्वच्छा = निर्मला, लावण्यवापी = सौन्दर्यवापी तस्यां सम्भूतं = प्रादुर्भूतं यत् अम्भोजं = कमलं तस्य शोभां = श्रियं विदधत् = विशेषेण धारयत्। जङ्घाकाण्डो-

---

साड़ी न पहन कर एक साधारण श्वेत वस्त्र धारण कर लिया।

प्रतिभा और व्युत्पत्ति दोनों ही कल्याणकर होती हैं। ऐसा आचार्य राजशेखर (यायावरीय) का मत है। जिस प्रकार लावण्य के बिना रूप-सम्पदा और रूप सम्पदा के बिना लावण्य की शोभा नहीं होती है, दोनों की अन्योन्याश्रित शोभा होती है। दोनों के उभयात्मक योग का यह उदाहरण है—

जिनकी जंघायें ही सुन्दर कमल नाल है, नाखूनों की किरणों से निकलने वाली सुन्दर किरणें ही केसर की पंक्ति हैं, पैरों में तत्काल ही लगी हुई महावर मानों कमल का किसलय है तथा पैरों की मन्जीर (नूपुर) ही भवरों की गुन्जार है, इस प्रकार अपने स्वामी शङ्कर के नृत्य की अनुकृति में अपने शरीर के स्वच्छ (सुन्दर) लावण्यरूपी वापी से समुद्भूत

प्रतिभाव्युत्पत्तिमांश्च कविः कविरित्युच्यते। स च त्रिधा। शास्त्रकविः काव्यकविरुभयकविश्च। 'तेषामुत्तरोत्तरीयो गरीयान्' इति श्यामदेवः। 'न' इति यायावरीयः। यथा स्वविषये सर्वो गरीयान्। नहि राजहंसश्चन्द्रिकापानाय प्रभवति, नापि चकोरोऽद्भ्यः क्षीरोद्धरणाय। यच्छास्त्रकविः काव्ये रससम्पदं विच्छिनत्ति।

रुनालः = जङ्घाकाण्डमेव उरु = महत् नालम् = नालदण्डः यस्मिन् सः। नखानां किरणा एव लसन्ति = शोभमानानि केसराणि तेषां माल्याः = पङ्क्तिः करालः = निम्नोन्नतः इति नखकिरणलसत्केसरालीकरालः। प्रत्यग्रस्य = अभिनवस्य, तत्काललिप्तस्य अलक्तकस्य = यावकस्य आभायाः = कान्तेः प्रसारा एव किसलयानि = नवीननिर्गतपत्राणि यस्य सः प्रत्यग्रालक्ताभाप्रसरकिसलयः। मञ्जुः = मनोहरः मञ्जीरः = पादभूषणमेव भृङ्गः = भ्रमरो यस्मिन् स मञ्जुमञ्जीरभृङ्गः।

प्रतिभाव्युत्पत्तिभ्यां युक्तः, प्रतिभावान् व्युत्पत्तिवांश्च कविः = कविशब्दभाग् भवतीति तं विभजति—स चेति। श्यामदेवस्याचार्यस्य मतेन तेषां त्रिविधानां कवीनां मध्ये उत्तरोत्तरीयः = पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् अग्रे वर्तमानः गरीयः उत्कृष्टतरो भवति यथा शास्त्रकवेः उत्कृष्टः काव्यकविः, ततः उत्कृष्टतरः उभयकविः। श्यामदेवमतात् स्वकीयं भिन्नं मतं प्रदर्शयति यायावरीयो राजशेखरकविः—नेति। श्यामदेवमतं न समीचीनं यतो हि सर्वे स्व-स्वविषये सन्ति गरीयांसः। स्वमते दृष्टान्तं प्रस्तौति—नहीति। राजहंसो हि चन्द्रिकां पातुं न प्रभवति किन्तूदकात् दुग्धोद्धरणे एव स प्रवीणः, चकरोऽपि जलात् दुग्धं पृथक् कर्तुं न प्रभवति, किन्तु कौमुदीपानाय स समर्थः। तथा च स्वाभ्यस्ते एव विषये सर्वो जनः प्रकर्षवान् भवतीति निरवद्यम्।

त्रिविधकविभेदं दर्शयति—यदिति। यद्=यतः शास्त्रकविः काव्ये = स्वनिर्मिते काव्ये रसं सम्पदं = रसाभिव्यञ्जनसमर्थशब्दार्थगुम्फनं विच्छिनत्ति = रससम्पदो

कमल की शोभा के अभिनय कारिणी भवानी का अभिनव दण्डपाद (चरण) ने अपने ही शरीर के स्वच्छ लावण्य रूपी वापी से समुद्भूत भवानी का अभिनय दण्डपात कमल की शोभा का प्रतिविधान करने लगा।

वस्तुतः कवि वही है जिसमें प्रतिभा तथा व्युत्पत्ति दोनों का ही योग है इसके ३ भेद हैं शास्त्र कवि, काव्यकवि, उभयकवि। इनमें शास्त्रकवि की अपेक्षा उभयकवि उत्तरोत्तर श्रेष्ठ होता है—यह आचार्य श्यामदेव का मत है, परन्तु यायावरीय का मत श्यामदेव के विपरीत है अर्थात् अपने-अपने विषय में सभी श्रेष्ठ हैं। इस सन्दर्भ में प्रमाण प्रस्तुत करते हुए राजशेखर का कथन है कि राजहंस चन्द्रिका पान नहीं कर सकता है और न चकोर ही नीर-क्षीर विवेक कर सकता है। अतः जो केवल शास्त्रकवि है, अपनी कविता में रस तत्त्व

यत्काव्यकविः शास्त्रे तर्ककर्कशमप्यर्थमुक्तिवैचित्र्येण श्लथयति। उभयकविस्तूभयोरपि वरीयान् यद्युभयत्र परं प्रवीणः स्यात्। तस्मात्तुल्यप्रभावावेव शास्त्रकाव्यकवी। उपकार्योपकारकभावं तु मिथः शास्त्रकाव्यकाव्योरनुमन्यामहे। यच्छास्त्रसंस्कारः काव्यमनुगृह्णाति शास्त्रैकप्रवणता तु निगृह्णाति। काव्यसंस्कारोऽपि शास्त्रवाक्यपाकमनुरुणद्धि काव्यैकप्रवणता तु विरुणद्धि। तत्र त्रिधा शास्त्रकविः। यः शास्त्रं विधत्ते, यश्च शास्त्रे काव्यं संविधत्ते, योऽपि काव्ये शास्त्रार्थं निधत्ते। काव्यकविः

विच्छेदं करोति। यद्=यतः काव्यकविः शास्त्रे=शास्त्रीयपदार्थप्रणयने तर्ककर्कशमप्यर्थं=कठिनमप्यर्थम् कर्कशध्वनिवर्णनीयम् उक्तिवैचित्र्येण=कोमलवर्णविन्यासेन, कथनवैलक्षण्येन वा श्लथयति=शिथिलीकरोति। उभयकविस्तु=उभयत्र यदि काव्ये, शास्त्रे च परं प्रवीणः स्यात् तदा उभयोः=द्वयोः गरीयान्=श्रेष्ठतमः। तस्मात् कारणात् शास्त्रकविः काव्यकविश्चेत्युभौ तुल्यप्रभावौ=समानौ स्त इति शेषः। किन्तु उपजीव्योपजीवकभावम्=उपजीव्योपजीवकत्वम्, मिथः=परस्परं तयोः शास्त्रकाव्यकव्योः, अनुमन्यामहे=अनुमोदामहे। यत=यतः शास्त्रस्य संस्कारः=शास्त्रस्य साधारणः प्रवेशः काव्यमनुगृह्णाति=काव्यरचनायां वैचित्र्यमुत्पादयति काव्यं चारु करोति, शास्त्रैकप्रवणवता केवलशास्त्रानुसारित्वं तु निगृह्णाति=काव्यचारुत्वस्य निग्रहं करोति। काव्यसंस्कारोऽपि शास्त्रीयवाक्यस्य पाकं=परिणतिसौष्ठवम्, अनुरुणद्धि=अनुवर्तते, काव्यैकप्रणता=काव्यमात्रज्ञानाधीनत्वम्, विरुणद्धि=विपरिवर्तते। उक्तभेदभिन्नान् त्रिधा कवीन् विभजते—तत्रेति। तत्र=तेषु, शास्त्रकविः त्रिधा भवति—यः शास्त्रं विधत्ते=शास्त्रीयान्

को पृथक् कर देता है। इसी प्रकार काव्यकवि भी शास्त्र को तर्कपूर्ण कटूक्तियों को अपने काव्यकौशल से शिथिल कर मनोरम बना देता है, किन्तु उभयकवि दोनों ही प्रकार के काव्यों में प्रवीण होता है। अतः वह श्रेष्ठ होता है।

इसलिए शास्त्रकवि तथा काव्यकवि दोनों ही समान प्रभाववाला माना जा सकता है। हमारे मत में शास्त्रकवि तथा काव्यकवि दोनों में उपकार्य-उपकारक भाव है, क्योंकि शास्त्रों-द्वारा संस्कारित होकर अधिक फल प्रद होता है। केवल शास्त्रों में प्रवीणता अथवा निर्भरता काव्य के अधिक उपादेय नहीं सिद्ध होती है। इसी प्रकार काव्यजन्य संस्कार भी शास्त्रीय वाक्यरचना में सहायक सिद्ध होता है, परन्तु केवल काव्यात्मकता हानिप्रद होती है।

शास्त्रकवि तीन प्रकार के होते हैं—

(१) प्रथम वे कवि जो केवल शास्त्रीय कविता करते हैं।

(२) दूसरे वे जो काव्य में शास्त्रीय तत्त्व का विधान करते हैं।

(३) तीसरे वे कवि हैं, जो काव्य में शास्त्रार्थ का सन्निवेश करते है।

पुनरष्टधा। तद्यथा—रचनाकविः, शब्दकविः, अर्थकविः, अलङ्कारकविः; उक्तिकविः, रसकविः, मार्गकविः, शास्त्रार्थकविरिति। तत्र रचनाकविः—

लोलल्लाङ्गूलवल्लीवलयितवकुलानोकहस्कन्धगोले-
गोलाङ्गूलैर्नदद्भिः प्रतिरसितजरत्कन्दरामन्दिरेषु।
षण्डेषूद्दण्डपिण्डीतगरतरलकाः प्रापिरे येन वेला-
मालङ्घ्योत्तालतल्लस्फुटितपुटकिनीबन्धवो गन्धवाहाः॥

ग्रन्थान् विरचयति (अयमेकः प्रकारः) यश्च शास्त्रे काव्यं विधत्ते=शास्त्रीयान् पदार्थान् काव्यरूपेण परिणयति (अयं द्वितीयः प्रकारः) योऽपि काव्ये शास्त्रार्थं निधत्ते=काव्यपदार्थान् शास्त्रीयपरिभाषया निबध्नाति (अयं तृतीयः प्रकारः)।

तत्र रचनाकविरुदाह्रियते—लोलदिति। येन=राज्ञा, वेलां=समुद्रस्य तटम्, आलङ्घ्य=आसमन्तात् लङ्घयित्वा, लोलत्=चञ्चलं यत् लाङ्गूलं=पुच्छं तदेव वल्ली=लता तया वलयितः=वेष्टितो मण्डितः वकुलानोहकानां=वकुलवृक्षाणां स्कन्दगोलः=शाखामण्डलं यैस्ते तैः लोलल्लाङ्गूलवल्लीवलयितवकुलानोकहस्कन्दगोलैः। नदद्भिः=शब्दायमानैः, गोः लाङ्गूलवल्लाङ्गूलं येषां ते तैः गोलाङ्गूलैः कृष्णमुखैः वानरैः, अत एव प्रतिरसितेन=प्रतिध्वनिना जरन्त्यः=जीर्णाः कन्दराः=गह्वराणि एव मन्दिराणि येषु ते तेषु प्रतिरसितजरत्कन्दरामन्दिरेषु। उद्दण्डानां=उन्नतदण्डानाम्, पिण्डीतगराणां=पिण्डखर्जूराणाम् तरलकाः=कम्पनकर्तारः उद्दण्डपिण्डीतगरतरलकाः। उत्तालाः=गम्भीराः ये तल्लाः=जलाशयाः तेषु स्फुटितानां =विकसितानां पुटकिनीनां=पद्मिनीनां बन्धवः=सुहृदः, इति उत्तालतल्लस्फुटितपुटकिनीबन्धवः। गन्धवाहाः=सुगन्धयुक्ताः, वायवः=प्रापिरे=निषेविताः।

काव्य कवि के आठ भेद होते हैं।

(१) रचनाकवि (२) शब्दकवि (३) अर्थकवि (४) अलंकारकवि (५) उक्तिकवि (६) रसकवि (७) मार्गकवि और (८) शास्त्रार्थकवि।

रचनाकवि—जिस राजा ने समुद्र तट की वेला को पारकर कमलसमूहों में विकसित कमलिनियों की सुगन्ध से मिश्रित वायु का सेवन किया, जो वायु ऊँचे-ऊँचे पिण्डखजूरों को कंपा रही हैं और जिस तटपर कन्दरारूपी मन्दिरों को वकुल वृक्ष के स्कन्ध मण्डल को अपनी चञ्चल लङ्गूल रूपी लता द्वारा वेष्टित करने वाले कृष्णवानर अपनी प्रतिध्वनि से विदीर्ण कर रहे हैं।

विशेष :—इस पद्य में शब्दसौन्दर्य तो अवश्य उत्तम है, परन्तु अर्थ का सौष्ठव नहीं अच्छा है। अतः यह पद्य रचनाकवि की कृति के रूप में प्रस्तुत है।

त्रिधा च शब्दकविर्नामाख्यातोभयभेदेन । तत्र नामकविः—

विद्येव पुंसो महिमेव राज्ञः प्रज्ञेव वैद्यस्य दयेव साधोः ।
लज्जेव शूरस्य मृजेव यूनो विभूषणं तस्य नृपस्य सैव ॥

आख्यातकविर्यथा—

उच्चैस्तरां जहसुराजहृषुर्जगर्जुराजघ्निरे भुजतटीनिकरैः स्फुरद्भिः ।
सन्तुष्टुवुमुमुदिरे बहु मेनिरे च वाचं गुरोरमृतसम्भवलाभगर्भाम् ॥

नामाख्यातोभयभेदेन शब्दकविः त्रिधा = त्रिप्रकारः । तत्र नाम केवलं संज्ञाशब्दं कवते यः सः नामकविः यथा—विधेवेति । पुंसः=पुरुषस्य, विधेव = यथा पुंसः विद्याभूषणं वर्तते राज्ञः = नृपतेः महिमेव = महत्त्वमिव यथा, वैद्यस्य = चिकित्सकस्य, प्रज्ञेव = सदद्विवेकिनी बुद्धिरिव, साधोः = सज्जनस्य, दयेव = भूतानुकम्पा यथा, शूरस्य = वीरस्य लज्जेव = त्रपेव, यूनः = युवकस्य, मृजा = शुद्धिः, इव = यथा भूषणम् = आभूषणं तथैव तस्य नृपस्य=राज्ञः, सैव=सा नायिकैव विभूषणम् = आभरणम् । अत्र कविना विद्याप्रभृतीनां संज्ञाशब्दानामेव संघटना कृता नान्येषाम् ।

आख्यातं तिङन्तं कवते रचयति योऽसौ आख्यातकविः यथा—उच्चैरिति । देवासुरैर्मथ्यमानात् समुद्रात् अमृतस्य = पीयूषस्य सम्भवः = उत्पत्तिः तस्य लाभः गर्भे यस्याः सा ताम् अमृतसम्भवलाभगर्भां = समुद्रमन्थनकाले सुधालाभो भविष्यतीति साभिप्रायां गुरो बृहस्पतेः वाचं = भविष्यद्वाणीमुपश्रुत्य देवाः = सुराः उच्चैस्तरां जहसुः, आजहृषुः । अन्यत् स्पष्टम् । पद्येऽस्मिन् जहसुरित्यादीमाख्यातानामेव प्रयोगबाहुल्यं विद्यते ।

शब्द कवितीन प्रकार के होते हैं। (१) नामकवि (२) आख्यातकवि (३) उभयकवि। नामकवि का निम्नलिखित उदाहरण है :—

जिस प्रकार पुरुष का भूषण विद्या, राजा का भूषण महिमा, चिकित्सक का भूषण प्रज्ञा, सज्जन का भूषण दया, शूरवीर का भूषण लज्जा, नवयुवक का भूषण शुद्धि आदि होता है, उसी प्रकार वह तरुणी उस राजा का भूषण है।

(इस श्लोक में केवल नामसंज्ञा पदों का ही प्रयोग किया गया है।)

आख्यातकवि का उदाहरण निम्नलिखित है—

समुद्रमन्थन के समय जब सुरगुरु बृहस्पति के द्वारा अमृत की प्राप्ति के सम्बन्ध में घोषणा की जाने पर सभी देवतागण उच्च स्वर से हँसने लगे, हर्षित हो गये, गरजने लगे, अपनी फड़कती हुई भुजाओं से आघात करने लगे, सन्तुष्ट हो गये, प्रसन्न हुए और अपने को धन्य मानने लगे।

(उपर्युक्त श्लोक में आख्यात (क्रिया) पदों का प्रयोग बहुलता से किया गया है।)

नामाख्यातकविः—

हतत्विषोऽन्धा शिथिलांसबाहवः
स्त्रियो विषादेन विचेतना इव।
न चुक्रुशुर्नो रुरुदुर्न सस्वनु-
र्न चेलुरासुर्लिखिता इव क्षणम् ॥

अर्थकविः—

देवी पुत्रमसूत नृत्यत गणाः किं तिष्ठतेत्युद्भुजे
हर्षाद् भृङ्गिरिटावुदाहृतगिरा चामुण्डयाऽलिङ्गिते।

नामाख्याते उभे कवते रचयति वर्णयति यः स नामाख्यातकविः = नामाख्यातोभयकविः, यथा—हतत्विष इति। स्त्रियः = नार्यः, पत्युर्मरणेन, हतत्विषः = अपगताभाः, क्षीणकान्तयः, निष्प्रभाभा, अन्धाः = अवलोकयितुमसमर्थाः किंकर्तव्यविमूढाः, शिथिलांसबाहवः = शिथिलौ=श्लक्ष्णौ अंसौ = स्कन्धौ, बाहूः = करौ यासां ताः तथाविधाः। विषादेन = शोकेन, विचेतनाः = गतचेतना मूर्छिताः, अपगतविवेकाः इव = यथा न चुक्रुशुः, न रुरुदुः, न सस्वनुः, किन्तु तदा लिखिताः = चित्रलिखिता इव न चेलुः। अत्र पूर्वार्द्धे नाम्नामुत्तरर्द्धि च आख्यातानां रचना वर्तते।

अर्थमात्रमलङ्कारादिहीनं कवते वर्णयति योऽसावर्थकविः = यथा देवीति। देवी = पार्वती, पुत्रं = सुतम्, असूत = प्रासोष्ट, अतः हे गणाः = अपि पार्षदाः! नृत्यत = नर्तनं कुरुत, किं तिष्ठत = कथमुपविष्टा भवथ, इति = इत्थम् हर्षात् = प्रमोदात्, उद्भुजे = ऊर्ध्वबाहू भृङ्गरिटौ एतन्नामके गणे, उदाहृतगिरा = विहितप्रसन्नतासूचकशब्दया चामुण्डया = तन्नामकस्त्रीगणविशेषेण, आलिङ्गिते = कृत-

---

उभयकवि (नाम और आख्यातकवि)—अपने-अपने पतियों के मरने पर स्त्रियाँ दुःख कातर होकर कान्तिहीन, अन्धी सी, शिथिला, बाँह तथा कन्धों वाली होकर मूर्च्छित होकर वे न तो क्रन्दन कर सकीं, न रो सकीं, न बोल सकीं और न चल सकीं। क्षण भर के लिए केवल चित्रलिखित प्रतिमा की तरह बन कर रह गयीं।

(उपर्युक्त श्लोक के पूर्व दो पादो में नाम पदों का और उत्तरवर्ती दोनों पादों में आख्यात पदों का प्रयोग किया गया है।) इस प्रकार उभयकवि का यह उपयुक्त उदाहरण है।

अर्थकवि का उदाहरण—

पार्वती देवी ने पुत्र को जन्म दिया है। अतः हे गणों नृत्य करो—क्यों खड़े हो। इस प्रकार हाथ उठाकर प्रसन्नतापूर्वक कहने वाले भृङ्गीरिटि से चामुण्डा ने आलिङ्गन क

पायाद्वो जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रवृत्तिस्तयो-
रन्योन्याङ्कनिपातजर्जरजरत्स्थूलास्थिजन्मा रवः ॥

द्विधाऽलङ्कारकविः शब्दार्थभेदेन । तयोः शब्दालङ्कारः—

न प्राप्तं विषमरणं प्राप्तं पापेन कर्मणा विषमरणं च ।
न मृतो भागीरथ्यां मृतोऽहमुपगुह्य मन्दभागी रथ्याम् ॥

लिङ्गने सति तयोर्द्वयोः भृङ्गिरिटचामुण्डयोः रवः = शब्दः वः = युष्मान्, पायात् = रक्षतु । किम्भूतो रवः, अन्योन्याङ्कनिपातजर्जरत्स्थूलास्थिजन्मा = अन्योन्यस्य = परस्परस्य, अङ्के = क्रोडे, निपातेन = निपतनेन, जर्जरं = भग्नप्रायं जरत् = जीर्णम् यत् स्थूलास्थि तस्मात् जन्म = उत्पत्तिर्यस्य स तादृशः तथा जितदेवदुन्दुभिघनध्वानप्रवृत्तिः = जिताः लङ्घिता देवदुन्दुभेः देवभेर्याः = घनध्वानस्य = निविडध्वनेः, प्रवृत्तिः येन सः तथाभूतः । पार्वतीदेव्याः प्रथमसन्ततिजन्मश्रवणात् आनन्दनिमग्नानां तद्गणानां कायिको वाचिको मानसिकश्च भावोऽत्र वर्णितः ।

शब्दालङ्कारार्थालङ्कारभेदेनालङ्कारकविः द्विधा = द्विप्रकारकः तयोर्मध्ये प्रथमोपस्थितत्वात् प्रथमं शब्दालङ्कारमुदाहरति—न प्राप्तमिति । विषमं जयपराजययोरनवस्थितत्वात् यद्रणमिति विषमरणं = असमानयुद्धम्, न प्राप्तं, किन्तु पापेन = कलुषितेन, कर्मणा = कार्येण हेतुभूतेन विषमरणं विषेन विषद्वारा मरणं प्राप्तम् = लब्धम् । भागीरथ्यां = गङ्गायाम्, भागीरथीगङ्गातीरे न मृतः = न प्राणैर्वियुक्तः, किन्तु मन्दभागी = भाग्यहीनः, अहं रथ्यां = प्रतोलीम्, उपगुह्य = आलिङ्ग्य मार्गे एव मृतः । अत्र प्रथम-द्वितीययोः तृतीयचतुर्थयोश्च चरणयोर्मध्ये यमकालङ्कारः । स च शब्दालङ्कारे गणितोऽस्ति कस्यापि निर्विण्णस्य पुंस उक्तिरियम् ।

लिया । आलिंगन में अनेक अंगों की रगड़ होने से उनकी जीर्ण-शीर्ण पुरानी मोटी-मोटी हड्डियों की टकराहट का शब्द देवताओं के द्वारा बजायी जा रही दुन्दुभियों के गम्भीर शब्द-घोष से भी बढ़ गया । अतः ऐसा शब्द आप लोगों की रक्षा करे ।

शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार के भेद से अलंकार कवि भी दो प्रकार के होते हैं—उनमें शब्दालङ्कार का यह उदाहरण है—

मुझे घोर संग्राम (विषम रण) करने को नहीं मिला, प्रत्युत विष पीकर मरना (विष-मरण) पड़ रहा है । भागीरथी (गङ्गा) के तट पर मेरी मृत्यु नहीं हुई, वरन् मन्दभागी (अभागा) मैं गली में प्राण छोड़ रहा हूँ ।

(प्रस्तुत श्लोक में शब्दालङ्कार—यमक का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।)

अर्थाऽलङ्कारः—

भ्रान्तजिह्वापताकस्य फणच्छत्रस्य वासुकेः ।
दंष्ट्राशलाकादारिद्र्यं कर्त्तुं योग्योऽस्ति मे भुजः ॥

उक्तिकविः—उदरमिदमनिन्द्यं मानिनीश्वासलाव्यं
स्तनतटपरिणाहो दोर्लतालेह्यसीमा ।
स्फुरति च वदनेन्दुर्दृक्प्रणालीनिपेय-
स्तदिह सुदृशि कल्याः केलयो यौवनस्य ॥

अर्थालङ्कारमुदाहरति—भ्रान्तेति । भ्रान्तजिह्वापताकस्य—भ्रान्ता = चञ्चला जिह्वा = रसना एव पताका यस्य स तस्य तथाविधस्य, फणच्छत्रस्य = फण एव छत्रं यस्य स तस्य, वासुकेः = नागराजस्य, दंष्ट्राशलाकादारिद्र्यं = दंष्ट्रा रूपा या शलाका तस्यां दारिद्र्यम् अभावं भञ्जनम्, कर्तुं विधातुम्, मे = मम, भुजः=बाहुरेव योग्यः = समर्थः अस्ति=वर्तते । अस्मिन् पद्ये जिह्वायां पताकायाः, फणे छत्रस्य, दंष्ट्रायां शलायाश्चारोपाद्रूपकालङ्कारः । एष हि अर्थालङ्कारमध्यवर्ती अलङ्कारः ।

उक्तिं वक्रोक्तिमेव कवते वर्णयति यः स उक्तिकविरुदाह्रियते, यथा—उदरमिति । कश्चनकाश्चिद् नवद्यां कामिनीमवलोक्य उक्तिवैचित्र्येण स्वमित्रं ब्रवीति = अनिन्द्यं = सर्वथा निर्दोषम्, प्रशंसनीयम्, इदं = एतत् उदरं = कटिप्रदेशः, मानिनीश्वासलाव्यं= मानिन्याः = माने प्रवीणायाः श्वासेन = निःश्वासवायुना लाव्यम् = अवश्यं लवितुं-योग्यं, स्तनतटपरिणाहः = स्तनतटस्य = पयोधरभागस्य, परिणाहः = विशालता, दोर्लतालेह्यसीमा=दोरेव लता दोर्लता तस्या लेह्यः=स्पृश्यः सीमा=स्थितिः यस्य स तादृश अस्ति । अनेन स्तनयोः पीनत्वं पृथुलत्वं च सूच्यते, दिक्प्रणालीनिपेयः = दृगेव = लोचनमेव प्रणाली = नालिका तया निपेयः पातुं योग्यः, अवलोकनार्हः, वदनेन्दुः = मुखचन्द्रः स्फुरति = प्रकाशते । तत् = तस्मात् कारणात्, इह=अस्याम्,

---

अर्थालङ्कार का निम्नलिखित उदाहरण है—जिसकी लपलपाती जिह्वा ही पताका है, फन ही जिसका छत्र है, उस वासुकी के दन्तशलाकाओं (दाँत ही जिसकी शलाका है) को तोड़ सकने में मेरी भुजा समर्थ है । (उपर्युक्त श्लोक जिह्वा, पताका, फणच्छत्र तथा दंष्ट्राशलाका में रूपकालंकार है । अतः यह श्लोक अर्थालङ्कार कवि का उदाहरण है ।)

उक्तिकवि का उदाहरण—

मानिनी के श्वास से छिन्न होने वाला इसका उदर (कटिप्रदेश) अत्यन्त सुन्दर है, स्तन तट इतने बढ़े हुए हैं कि बाहुरूपी लताओं का स्पर्श कर रहे हैं, दृष्टि से पीने योग्य इसका मुख चन्द्र सुशोभित हो रहा है, इस दर्शनीय सुन्दरी में यौवनकलियाँ मानों किलोल

यथा वा--प्रतीच्छत्याशोकीं किसलयपरावृत्तिमधरः
कपोलः पाण्डुत्वादवतरति ताडीपरिणतिम् ।
परिम्लानप्रायामनुवदति दृष्टिः कमलिनी-
मितीयं माधुर्यं स्पृशति च तनुत्वं च भजते ॥

रसकविः--

एतां विलोकय तनूदरि ताम्रपर्णी-
मम्भोनिधौ विवृतशुक्तिपुटोद्धृतानि ।

सुदृशि = सुलोचनायाम्, यौवनस्य = तारुण्यस्य, कल्पाः = मादकाः मनोरमाः, केलयः = क्रीडाः, विलसन्ति । अत्रोक्तावेव वैचित्र्ययोगितयाभिधान एव कवेस्तात्पर्यम् । अतृप्यन् पुनस्तामेव दर्शयति–प्रतीच्छतीति । अधरः = अधरोष्ठः, आशोकीं= अशोकसम्बन्धिनीम् । किसलयपरावृत्तिं = किसलयेभ्यः = पल्लवेभ्यः परावृत्तिं = परावर्तनम् । प्रतीच्छति = वाञ्छति, कपोलः = गण्डस्थलम्, पाण्डुत्वात् = पाण्डुवर्णत्वात्, ताडीपरिणयति = परिणतताडीफलशोभाम्, अवतरति = दधाति, दृष्टिः= लोचनम्, परिम्लानप्रायं = सङ्कुचितप्रायम्, कमलिनीं = कमललताम्, अनुवदति= अनुसरति । इति = इत्थम्, एषा = तरुणी, माधुर्यं = मनोहरत्वम्, स्पृशति च = तथा तनुत्वं = कृशतां च = अपि, भजते = धारयति । अत्र प्रतीच्छति, अवतरति, अनुवदति, स्पृशतीत्यादि चेतनक्रियाधर्माणामचेतनेषु अधरादिषु अध्यारोपः उपचारवक्रत्वं प्रत्याययति ।

रसमेव कवते वर्णयति योऽसौ रसकविः उदाह्रियते--एतामिति । जले विहरन्

कर रही है ।

(उपर्युक्त श्लोक में नायिका की क्षीण कटि, बढ़े हुए स्तन, सुन्दर मुखचन्द्र का वर्णन विशिष्ट उक्तियों द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।)

अथवा—(उक्तिकवि का यह अन्य उदाहरण)—

इस (आरम्भयौवना) सुन्दरी के अधर अशोक के किसलय की लालिमा का अनुकरण करने वाले हैं । पीताभ कपोल पके हुए ताड़ फल के समान प्रतीत हो रहे हैं, बन्द होती हुई कमलिनी के समान इसके नेत्र अधमुदे हैं । इस प्रकार यह नायिका माधुर्य का स्पर्श कर रही तथा कृशशरीरा भी हो रही है ।

(उपर्युक्त श्लोक में यौवन के देहली पर पैर धरने वाली नायिका के सौन्दर्य का चित्रण विशेष उक्तियों द्वारा किया गया है, अतः यह उक्तिकवि का अच्छा उदाहरण है ।)

रसकवि का उदाहरण—

हे कृशोदरि ! इस ताम्रपर्णी नदी को देखो । समुद्र में मिलती हुई इस नदी का जल,

यस्याः पयांसि परिणाहिषु हारमूर्त्या
वामभ्रुवां परिणमन्ति पयोधरेषु ॥

मार्गकविः—मूलं बालकवीरुधां सुरभयो जातीतरूणां त्वचः
सारश्चन्दनशाखिनां किशलयान्यार्द्राण्यशोकस्य च ।
शैरीषी कुसुमोद्गतिः परिणमन् मोचं च सोऽयं गणो
ग्रीष्मेणोष्महरः पुरा किल ददे दग्धाय पञ्चेषवे ॥

कोऽपि नायकः काञ्चिन्नयिकां वदति । हे तनूदरि ! = अयि कृशोदरि ! एतां = विहारकालेऽनुभूयमानाम्, ताम्रपर्णीं = ताम्रपर्णीनाम्नीं नदीम्, विलोकय = अवलोकय, अम्भोनिधौ = जलधौ यस्याः = ताम्रपर्ण्याः, विवृतशुक्तिपुटोद्धृतानि = विवृत्तेभ्यः विकसिताननेभ्यः शुक्तिपुटेभ्यः उद्धृतानि = सञ्चितानि पयांसि = जलानि, वामभ्रुवां = सुन्दरभ्रुकुटीनाम् रमणीनां परिणाहिषु = विशालेषु, पयोधरेषु = स्तनमण्डलेषु, हारमूर्त्या = हाररूपेण, परिणमन्ति = परिणतिं प्राप्नुवन्ति, ताम्रपर्णीजलान्येव शुक्तिषु स्थितानि सागरे मौक्तिकात्मना परिणमन्तीत्यर्थः ।

मार्ग्यन्ते अन्वेष्यन्ते गुणा अस्मिन्निति मार्गो रीतिः, तमेव कवते वर्णयति यः सः मार्गकविरुदाह्रियते—मूलमिति । बालकाश्च ता विरुधः बालकविरुधः तासां बालकविरुधाम् = कोमललतानाम् । मूलं = बीजं, स्कन्दम्, जातीतरूणां = जात्यास्तरवः जातीतरवः तेषां जातीतरूणाम् = मालतीवृक्षाणाम् । सुरभयः = सुगन्धयः, त्वचः = वल्कलानि । चन्दशाखिनां = मलयजतरूणाम् । सारः = परिमलः । च = तथा, अशोकस्य = वकुलस्य, आर्द्राणि = प्रत्यग्रणि क्लिन्नानि, किसलयानि = नूतनानि पल्लवानि, शैरिषी = शिरीषसम्बन्धिनी, कुसुमोद्गतिः—कुसुमानामुद्गतिः उत्पत्तिः कुसुमोद्गतिः = प्रसूनसमुद्भवः, परिणमत् = पाकोन्मुखम्, मोचकं = कदली, सः=पूर्वोक्तः अनुपमेय उष्महरः सन्तापापहारकः गणः = मूलादीनां समूहः

खुली हुई सीपियों के पुटों से निकल कर, कुटिल भौंहों वाली स्त्रियों के बढ़े हुए स्तनों पर हार बनकर सुशोभित हो रहा है ।

(उपर्युक्त श्लोक महाकवि कालिदास रचित है । इसमें रसत्व का पूर्ण परिपाक हुआ है ।)

मार्ग कवि का उदाहरण—

कोमल लताओं की जड़, मालती वृक्षों का वल्कल, चन्दन वृक्षों का सार, अशोक के नये-नये पल्लव, शिरीष का पुष्पोद्गम, और पकता हुआ केला इन वस्तुओं का यह समूह गर्मी के ताप को दूर करने वाला है । अतः पहले भगवान् शिवजी की क्रोधाग्नि से दग्ध हुए पांच बाण वाले मदन के लिए ग्रीष्म के द्वारा प्रदान किया गया । अर्थात् ग्रीष्मऋतु ने

शास्त्रार्थकवि.—

आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ
ज्ञानोद्रेकाद्विघटिततमोग्रन्थयः सत्त्वनिष्ठाः ।
यं वीक्षन्ते कमपि तपसां ज्योतिषां वा परस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम् ॥

ग्रीष्मेण = ग्रीष्मर्तुना, पुरा = पूर्वं दग्धाय = शिवनेत्राग्निना भस्मीभूताय, पञ्चेषवे = मदनाय, ददे = प्रदत्तः, उष्महरा एते पूर्वोक्ताः पदार्था ग्रीष्मे एव भवन्तीति भावः । अत्र कोमलवर्णसमासरचनया वैदर्भीरीतिघटितमिदं पद्यम् ।

शास्त्रीयं पदार्थं कवते वर्णयति यः सः शास्त्रार्थकविः उदाह्रियते यथा-- आत्मारामेति । भगवतः श्रीकृष्णस्य बन्धनायोद्यतं दुर्योधनं निशम्य पृच्छन्तं सहदेवं प्रति भीमः तस्य ब्रह्मस्वरूपत्वं प्रतिपादयन्नाह वेणीसंहारनाटके--आत्मनि आसमन्तात् रमन्ते विचरन्तीति आत्मारामाः = आत्मनि विचरणशीलाः, यद्वा आ सम्यक् रमन्ते अस्मिन्निति आरामः रमणस्थलम् आत्मा आरामो येषां ते आत्मारामाः = योगिनः, निर्विकल्पे = ज्ञात-ज्ञान-ज्ञेयशून्ये, भेदावभासरहिते, समाधौ = आत्मसंयमे, विहिता = प्रेरिता रतिः तल्लीनता यैस्ते विहितरतयः, ज्ञानस्य = आत्मसाक्षात्कारस्य उद्रेकात् = आधिक्यात् विघटिततमोग्रन्थयः-विघटिताः = उच्छिन्नाः तमसः = अज्ञानस्य ग्रन्थयः = बन्धनानि यैस्ते तथाविधाः नाशितमिथ्याज्ञानजन्यसंस्काराः, सत्त्वे निष्ठा येषां ते सत्त्वनिष्ठाः सात्त्विकभावापन्नाः, सन्तः यं = कमपि अवाङ्मनसगोचरं वीक्षन्ते = साक्षात्कुर्वन्ति, पश्यन्ति, कथं योगिभिरेव दर्शनीयः = स इति चेट् आह--तमसां = अन्धकाराणां तामसानां मिथ्याज्ञानानाम्, ज्योतिषां तेजसां राजसानां वा परस्तात् = परं वर्तमानं यं = यादृशं कमपि अनिर्वचनीयं

समस्त वस्तुओं को उपचार के लिए कामदेव को दिया है, क्योंकि ये सभी उपहार ग्रीष्म ऋतु में ही उत्पन्न होते हैं ।

(यहाँ कवि ने जड़ से लेकर फल तक का वर्णन बड़े ही आकर्षक ढंग से वैदर्भी रीति का आश्रय लेकर किया है । अतः इसे मार्ग रीति कवि का उदाहरण मानने में कोई आपत्ति नहीं ।)

शास्त्रार्थकवि का उदाहरण--

आत्मा में ही रमण करने वाले ब्रह्मज्ञानी निर्विकल्प समाधि में रत ज्ञान के उदय होने से जिनकी अज्ञान ग्रन्थि टूट गयी है, ऐसे सत्त्वनिष्ठ योगीजन तम और प्रकाश से परे उस परमात्मा का दर्शन किसी प्रकार बड़ी ही कठिनता से कर पाते हैं । अतः मोहान्ध दुर्योधन

एषां द्वित्रैर्गुणैः कनीयान्, पञ्चषैर्मध्यमः, सर्वगुणयोगी महाकविः। दश च कवेरवस्था भवन्ति। तत्र च बुद्धिमदाहार्यबुद्धयोः सप्त तिस्रश्च औपदेशिकस्य। तद्यथा—काव्यविद्यास्नातको, हृदयकविः, अन्यापदेशी, सेविता, घटमानः, महाकविः, कविराजः, आवेशिकः, अविच्छेदी, संक्रमयिता च। यः कवित्वकामः

वीक्षन्ते तं = तादृशम्, अमुं = एतम्, पुराणं = सनातनम्, देवं = परमात्मानम्, मोहान्धः = मोहेन = अज्ञानेन अन्धः = विमूढः, अयम् = एष दुर्योधनः, कथं = केन प्रकारेण, वेत्तु = जानातु, पूतान्तःकरणैः मुनिभिर्ज्ञेयो ब्रह्मरूपो भगवान् श्रीकृष्णः दुष्टेन दुर्योधनेन कथं ज्ञातुं शक्यः ? अत्रात्मारामनिर्विकल्पादिशब्दा योगशास्त्रगम्या एव निबद्धाः।

ननु प्राक् निर्दिष्टेषु कविषु अस्ति किञ्चित्तारतम्यमाहोस्वित् सर्वे सन्ति समाना इति जिज्ञासमाह—एषामिति। एषां = पूर्वकथितानामेकादशकवीनां मध्ये द्वित्रैः = द्वाभ्यां त्रिभिर्वा गुणैः = शब्दार्थालङ्काररचनात्मकैः गुणैः कनीयान् = अधमकोटि-गणितः, पञ्चषैः = पञ्च षड्वा परिमाणं येषां ते तैः = पञ्चभिः षड्भिर्वा गुणैः मध्यमः = मध्यकोटिकः, सर्वगुणयोगी = सर्वैर्गुणैः युज्यतेऽसौ सर्वगुणयोगी—पूर्वोक्तै-र्निखिलैर्गुणैर्युक्तः। महान्तमर्थराशिं कवते वर्णयति यः सः महाकविः = महा-कविव्यपदेशार्हो भवतीति भावः।

रचनायामपि मध्यमाधमभावो भवतीति दर्शयितुमाह—दशेति। कवेः काव्य-निबद्धा दश अवस्था भवन्ति। तत्र = दशावस्थानां मध्ये बुद्धिमांश्च आहार्यश्चेति बुद्धिमदाहार्यबुद्धी तयोः सारस्वताभ्यासिकयोः सप्तावस्था भवन्ति, औपदेशिकस्य= दुर्बुद्धेः, तिस्रोऽवस्थाः सन्ति।

प्रथमं काव्यविद्यास्नातकमाह—य इति। यः कवित्वस्य कामो यस्यासौ कविः

उस पुरातन देव श्रीकृष्ण को कैसे जान सकता है ?

(उपर्युक्त उदाहरण में शास्त्रीय शब्दों—आत्माराम निर्विकल्प समाधि, सत्त्वनिष्ठ का प्रयोग किया गया है। यह उदाहरण वेणीसंहार नाटक से लिया गया है।)

उपर्युक्त केवल दो या तीन गुणों से युक्त कवि निम्न श्रेणी का कवि होता है। पाँच गुणों से युक्त मध्यम श्रेणी का, तथा सभी गुणों से युक्त महाकवि कहलाता है। कवि की अवस्था के दश भेद होते हैं। बुद्धिमान् तथा आहार्य कवि की सात अवस्थाओं तथा औप-देशिक कवि की केवल तीन अवस्थायें होती हैं। वे दश अवस्थायें निम्नलिखित होती हैं—(१) काव्यविद्यास्नातक (२) हृदयकवि (३) अन्यापदेशी (४) सेविता (५) घटमान (६) महाकवि (७) कविराज (८) आवेशिक (९) अविच्छेदी (१०) संक्रामयिता।

काव्यविद्योपविद्याग्रहणाय गुरुकुलान्युपास्ते स विद्यास्नातकः। यो हृदय एव कवते निह्नुते च स हृदयकविः यः स्वमपि काव्यं दोषभयादन्यस्येत्यपदिश्य पठति सोऽन्यापदेशी। यः प्रवृत्तवचनः पौरस्त्यानामन्यतमच्छायामभ्यस्यति स सेविता। योऽनवद्यं कवते न तु प्रबध्नाति स घटमानः। योऽन्यतरप्रबन्धे प्रवीणः स महाकविः। यस्तु तत्र तत्र भाषाविशेषे तेषु तेषु प्रबन्धेषु तस्मिंस्तस्मिंश्च रसे स्वतन्त्रः स

त्वकामः कवित्वं कामयमानः यः काव्यविद्योपग्रहणाय = काव्यस्योपयोगिनी विद्या आन्विक्षिक्यादिशास्त्रम्, उपविद्याः चतुःषष्ठिकलाः ग्रहीतुं गुरूणां कुलानि, आचार्याश्रमान् उपास्ते = सेवते स प्रथमः काव्यविद्यास्नातकः कविः। यः स्वहृदये एव, लज्जाया, दोषप्रकाशनभयेन विनयादिना वा कवते पदार्थं वर्णयति, निह्नुते = गोपायति च सः हृदयकविः। यः स्वरचितमपि कवित्वं दोषं प्रदर्शनशङ्कया अन्यस्य कस्यचित् रचितम्, अपदिश्य = उक्त्वा, पठति = जनानां समक्षं श्रावयति सोऽन्यापदेशी कविः। यः प्रवृत्तवचनः = किञ्चित् किञ्चित् प्रचलितकविताप्रवृत्तिः पौरस्त्यानां पूर्वं जातानां गौडदेशोद्भवानां मध्ये अन्यतस्य कस्यचिदेकस्य, छायां = सरणिम्, भावं वा गृहीत्वा काव्यं कर्तुं पुनः पुनः प्रवर्ततेऽसौ प्रवृत्तवचनकविरुच्यते। यः अनवद्यं निर्दोषं विशुद्धं रसभावादिभरितं कवते वर्णयति, न तु प्रबध्नाति = न ग्रन्थघटकी करोति, स घटमानः कविः निगद्यते। यः अन्यतरप्रबन्धे = गद्यपद्यान्तरप्रबन्धग्रन्थरचनायां प्रवीणः = निपुणः कुशलो दक्षो वा स महाकविरित्युच्यते। यस्तु तत्र तत्र भाषाविशेषे संस्कृतप्राकृतापभ्रंशादिषु तेषु प्रबन्धेषु = गद्यपद्यमयचम्पूप्रभृतिग्रन्थेषु तस्मिंस्तस्मिंश्च शृंगारादौ रसे प्रबन्धनिर्माणे स्वातन्त्र्येण रसयोजने समर्थः स कविराज इत्युच्यते। एतादृशाः कविराजास्तु जगति

जो व्यक्ति कविता की इच्छा से काव्यविद्या तथा उसकी अंगभूत उपविद्याओंको ग्रहण करने के लिए गुरुकुल में वास करता है, वह काव्यविद्यास्नातक कवि कहलाता है। जो अपनी कविता को छिपाता है, किन्तु मन ही मन कविता करता है, वह हृदयकवि कहलाता है। जो कविता में दोष के भय से अर्थात् आलोचना के डर से अपनी ही कविता को दूसरे की कहकर सुनाता है वह अन्यापदेशी कवि कहलाता है। जो व्यक्ति अपने पूर्ववर्त्ती कवि विशेष की कविता शैली की छाया पर कविता करता है वह सेविता कवि के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

जो उच्चकोटि की कविता करता है, किन्तु प्रबन्ध काव्य के रूप में रचना करने में असमर्थ है, वह घटमान कवि है। किसी भी प्रकार के प्रबन्ध काव्य की रचना करने में समर्थ कवि, महाकवि कहलाता है। विभिन्न भाषाओं तथा विविध प्रकार के प्रबन्धों की रचना कर सकने में समर्थ, तथा उन काव्यो में सभी प्रकार के रसो के प्रयोग में सिद्धहस्त

कविराजः । ते यदि जगत्यपि कतिपये । यो मन्त्राद्युपदेशवशाल्लब्धसिद्धिरावेशसम-कालं कवते स आवेशिकः । यो यदैवेच्छति तदैवाविच्छिन्नवचनः सोऽविच्छेदी । यः कन्याकुमारादिषु सिद्धमन्त्रः सरस्वतीं सङ्क्रामयति स सङ्क्रामयिता ।

सततमभ्यासवशतः सुकवेः वाक्यं पाकमायाति । 'कः पुनरयं पाकः ?' इत्याचार्याः । 'परिणामः' इति मङ्गलः । 'कः पुनरयं परिणामः ?' इत्याचार्याः । 'सुपां तिङां च श्रवः सैषा व्युत्पत्तिः' इति मङ्गलः । सौशब्द्यमेतत् । 'पदनिवेश-

---

विश्वस्मिन् कतिपये = विरला एव भवन्ति । यः मन्त्रादुपदेशबलात् = मन्त्रप्रभाव-देवर्षिवरदानसारस्वतचूर्णसेवनादिना लब्धसिद्धिः=प्राप्तसिद्धिः आवेशसमकालं = यदावेशस्तस्मिन् काले कवते = काव्यं करोति स आवेशिकः कविः । यो यस्मिन् काले वाञ्छति तस्मिन्नेव काले प्रावाहिकं कवते असौ अविच्छेदी कविः । यो वा कन्याकुमारी कामाख्य-विन्ध्याचलदिषु सिद्धपीठेषु सिद्धमन्त्रः = कृतजपः सरस्वतीं वाग्देवीं संक्रामयति = स्वस्मिन् स्थापयति स संक्रामयिता कविः ।

इत्थं कविभेदात् निर्दिश्य तद्वचनाप्रौढिभावं व्याख्ययितुमाह— सततमिति । सततं = निरन्तरं पौनःपुन्येन प्रवृत्तिकारणात् पदानामवापोद्वापाभ्यां सन्निवेशेना-भ्यासवशात् कवेर्वाक्यं पाकमाप्नोति । तत्र पाकं निर्णेतुमाशङ्कते क इति—कः पुनरयं पाक इत्याचार्याणां सन्देहः । मङ्गलोक्त्या उत्तरयति—परिणाम इति । पाक-परि-णामयोः पर्यायबुद्धया पुनः प्रश्नः—कः पुनरयमिति । सुपां = सुबन्तानाम्, तिङां = तिङन्तानां च श्रवःप्रिया = श्रवणसुखकरी व्युत्पत्तिः = विशिष्टा उत्पत्तिः ।

ननु 'व्युत्पत्तिः सुप्तिङां या तु प्रोच्यते सा सुशब्दता' इति सरस्वतीकण्ठाभरण-पद्यानुसारं सुशब्दाख्यः गुण एव न तु पाकः, इत्याशङ्क्य समाधत्ते—सौशब्द्यमेत-

---

कवि को कविराज कहा जाता है । स प्रकार सभी भाषाओं तथा रसों में काव्य रचने वाले यदि हैं तो उनकी संख्या विरल ही है । जो कवि मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान से सिद्धि प्राप्त कर, आविष्ट होकर कविता करते हैं, वे आवेशिक कवि कहलाते हैं । जो जिस समय इच्छा करता है, उसी समय कविता करता है, वह अविच्छेदी कवि कहलाता है । मन्त्रानुष्ठान से सिद्ध जो कवि अपनी सरस्वती का संक्रमण बालकों तथा कन्याओं में भी कर देता है, वह सङ्क्रमणयिता कवि कहलाता है ।

सतत अभ्यास के बल से ही सुकवि के वाक्यों में परिपक्वता अर्थात् प्रौढ़ता आती है । आचार्यों का प्रश्न है कि पाक अर्थात् यह प्रौढ़ता क्या है ? आचार्य मंगल के मत में परिणाम ही पाक है । पुनः आचार्यों को यह जिज्ञासा होती है कि परिणाम क्या है ? इसके उत्तर में यह कहा गया है कि सुबन्त और तिङन्त (नाम और आख्यात) की श्रुतिमधुर शब्दावली की व्युत्पत्ति ही परिणाम है । ऐसा आचार्य मंगल का मत है ।

निष्कम्पता पाकः' इत्याचार्याः । तदाहुः--

आवापोद्धरणे तावद्यावद्दोलायते मनः ।
पदानां स्थापिते स्थैर्ये हन्त सिद्धा सरस्वती ॥

'आग्रहपरिग्रहादपि पदस्थैर्यपर्यवसायस्तस्मात्पदानां परिवृत्तिवैमुख्यं पाकः' इति वामनीयाः । तदाहु :--

यत्पदानि त्यजन्त्येव परिवृत्तिसहिष्णुताम् ।
तं शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दपाकं प्रचक्षते ॥

दिति । नायं परिणामः, किन्तु एतत् सौशब्द्यम् । कस्तर्हि पाकः ? पदविन्यासे पदस्य सुप्तिङन्तरूपस्य विन्यासे = निवेशने निष्क्रमता = स्थिरतैव पाकं = पाकशब्दवाच्य इत्याचार्याणां मतम् ।

तदाहुः = यथाहि—अवापेति—अवापः = सन्दर्भानुकूलपदनिवेशनम्, उद्धरणं प्रतिकूलपदपरित्यागः, अवापश्च उद्धरणं च अवापोद्धरणे आधानापसारणे एतद द्वयं तावदेव जायते यावद् मनो दोलायते एतादृशं पदं प्रयोगयोग्यम्, एतादृशं नेति चाञ्चल्यं भजते । पदानां = शब्दानाम् स्थैर्ये = दार्ढ्ये स्थापिते जाते सति, हन्त = हर्षे, सरस्वती = वाणी, सिद्धा = हस्तगता जायते । अस्मिन् मते पूर्वापेक्षया किञ्चिदुत्कृष्टो वदरपाक एव पाकाभिधेयः ।

वामनाभिप्रायं विवरीतुमुपक्रमते--आग्रहेति । परिगतो ग्रहः ग्रहणं यस्मादसौ परिग्रहः । आग्रहो न्यासः, परिग्रहोऽपसारणमिति आग्रहोपग्रहः तस्मात् अपि पदानां स्थैर्यं भवति । अतः पदानां परिवृत्तेः वैमुख्यं = पर्यायपरिवर्तनासहत्वं पाकः पाकपदाभिधेयः इति वामनाचार्यस्य मतम् । यथाहि--

यत्पदानीति । यत् = यतः, पदानि = प्रबन्धघटितानि पदानि, परिवृत्तिसहिष्णुतां = परिवृत्तिं पर्यायशब्दोपस्थापनं सहन्ते इति परिवृतिसहिष्णवः तेषां भावः तत्ता

इसे सौशब्द्य भी कहा गया है। पदगुम्फन विधि में प्रौढता ही पाक है। ऐसा अनेक आचार्यों का अभिमत है । इस सन्दर्भ में कहा गया है—

जब तक मन चञ्चल रहता है, तभी तक कविता करते समय पदों को रखने तथा हटाने का क्रम चलता रहता है । जब पदों के सन्निवेश में स्थिरता आ जाय, तब उस कवि की सरस्वती सिद्ध हो जाती है ।

आग्रहवशात् अर्थात् निरन्तर अभ्यास से पदों के रखने में स्थिरता आती है । अतः पदपरिवर्तन ही से विमुखता पाक है। ऐसा वामनाचार्य अनुयायिओं का मत है । कहा भी गया है—

पदों के परिवर्तन की प्रवृत्ति को जो कवि छोड़ देता है, उस कवि के शब्दपाक को,

'इयमशक्तिर्न पुनः पाकः' इत्यवन्तिसुन्दरी। यदेकस्मिन्वस्तुनि महाकवीनामनेकोऽपि पाठः परिपाकवान् भवति, तस्माद्रसोचितशब्दार्थसूक्तिनिबन्धनः पाकः। यदाह--

गुणालङ्कार-रीत्युक्ति-शब्दार्थग्रथन-क्रमः।
स्वदते सुधियां येन वाक्यपाकः स मां प्रति॥

तदुक्तम्---सति वक्तरि सत्यर्थे शब्दे सति रसे सति।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु॥

तां पूर्वोक्तां=परिवर्तनसहत्वम्, त्यजन्ति=परित्यजन्ति, परिवर्तनं न सहन्ते इत्यर्थः। शब्दन्यासनिष्णाताः शब्दानां=पदानां न्यासे=गुम्फने, निष्णाताः=प्रवीणाः कवयः तं शब्दपाकं प्रचक्षते=कथयन्ति। अस्मिन् मते नालिकेरीपाकः पाकाभिधेयोऽर्थः। यत् शब्दाः परिवृत्तिं न सहन्ते तत् इयं कवेः अशक्तिः=असामर्थ्यमेव, न पाकः इति अवन्तिसुन्दर्या राजशेखरभार्यायाः मतम्। यत्=यतः एकस्मिन्=वर्णनीये, वस्तुनि=पदार्थे, महाकवीनामनेकोऽपि=बहुविधोऽपि पाठः परिपाकवान् भवति। तस्मात्=पूर्वोक्तहेतोः रसोचितशब्दार्थसूक्तिनिबन्धनः यत्र रसयोग्यस्य शब्दस्य अर्थस्य सुभाषितानां च निबन्धनं भवति स पाकः=काव्यपाकः।

गुणेति। येन=पाकेन, सुधियां=विदुषाम्, गुणानाम्=अलङ्काराणाम् रीतिनाम्=उक्तीनाम्, शब्दानाम्, अर्थानां च ग्रथनस्य=गुम्फनस्य क्रमः=रचनापरिपाटी स्वदते=आस्वादयोग्यो भवति, आनन्दयति सः मां प्रति=मन्मते वाक्यस्य पाकः काव्यपाकोऽस्तीति भावः। अस्मिन् मते सहकारपाकः[1] पाकपदाभिधेयः।

वाक्यपाकमेव स्तुवन्नाह---सतीति। वक्तरि=कवयितरि, अर्थे=नूतनोल्लिखिते

शब्दविन्यास में निपुण लोग शब्दपाक कहते हैं।

इस सन्दर्भ में अवन्तिसुन्दरी का मत है कि यह तो अशक्ति है। इससे पाक नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि एक ही विषय में महाकवियों के अनेक पाठ दिखायी पड़ते हैं। जिन्हें परिपक्व पाठ की संज्ञा दी जा सकती है। अत एव रसमय, शब्द तथा अर्थ सूक्तियों से गुम्फित वाक्य पाक कहलायेगा। कहा गया है—

जिसके द्वारा गुण, अलङ्कार रीति, उक्ति तथा शब्द एवं अर्थ के ग्रथन का क्रम विद्वानों को आनन्दित करता है, मेरे मत में उसे ही वाक्यपाक कहा जाना चाहिए।

कहा है—वक्ता, शब्द, अर्थ और रस आदि के विद्यमान होने पर भी जिस तत्त्व के

---

१. गुणस्फुटत्वसाकल्ये काव्यपाकं प्रचक्षते।
चूतस्य परिणामेन स चायमुपमीयते॥

'कार्यानुमेयतया यत्तच्छब्दनिवेद्यः परं पाकोऽभिधाविषयस्तत्सहृदयप्रसिद्धिसिद्ध एव व्यवहाराङ्गमसौ' इति यायावरीयः। स च कविग्रामस्य काव्यमभ्यस्तो नवधा भवति। तत्राद्यन्तयोरस्वादु पिचुमन्दपाकम्, आदावस्वादु परिणामे मध्यमं बदरपाकम्, आदावस्वादु परिणामे स्वादु मृद्वीकापाकम्, आदौ मध्यममन्ते चास्वादु

पदार्थे शब्दे अनुशिष्टे रसे सति साधौ सत्यपि येन विना = यस्याभावे, वाङ्मधु = रचनामाधुर्यम्, न परिस्रवति = न स्यन्दते, न वहति तद् वाक्यपाकनामकं किमपि वस्तु अस्ति।

एवं पाकविषये विभिन्नानि मतानि प्रदर्श्य स्वमतमाह—कार्येति। परं = केवलं कार्येण = काव्यरूपेण अनुमेयः = अनुमातुं योग्यः, तस्य भावस्तत्ता तया = कार्यानुमेयतया यत्तच्छब्दाभ्यां निवेद्यः = प्रतिपाद्यः, अभिधाविषयः पाकशब्देनाभिधातुं शक्यः। एवञ्च यत्र पदानां प्रवृत्त्यसहिष्णुता गुणालङ्कारादीनां सुन्दरो रचनाक्रमः तत् काव्यं काव्यपदयुग् भवति। तत्तस्मात् सहृदयानां = भावकानां प्रसिद्धया सिद्धः = निष्पन्नः व्यवहाराङ्गं सहकारनारिकेरादिपाकपदव्यपदेशे बीजम् = कारणम्। इति यायावरगोत्रोद्भवस्य ग्रन्थकृतो राजशेखरस्यास्ति मतम्।

स च पाकः काव्यं पौनः पुन्येन अभ्यस्यतः = अनुशीलयतः, कविग्रामस्य = कविसमुदायस्य, नवधा = नवप्रकारकोऽस्ति। नवविधान् पाकान् निर्दिशति—तत्रेति—तत्र तेषां नवविधानां पाकानां मध्ये आद्यन्तयोः = आद्यावस्थायामन्तिभावस्थायां च, अस्वादु = अमधुरम्, पिचुमन्दपाकं = पिचुमन्दस्य = निम्बस्य पाक इव पाको यस्मिन्, यस्य वा तत् पिचुमन्दपाकम्। आदौ = आरम्भे चर्व्यमाणम् अस्वादु = अमधुरम्, परिणामे = परिणतौ मध्यमं बदरस्य पाक इव पाको यस्मिन् तत् बदरपाकम्। आदौ = प्रथमं चर्वणायाम्, अस्वादु = अमधुरं अन्ते = परिणतौ स्वादु = स्वादिष्टम्, मृद्वीका पाक इव पाको यस्य तत् मृद्वीकापाकम्। आदौ =

बिना काव्यवाणी से माधुर्य की सृष्टि नहीं होती है, उसे ही काव्यपाक कहते हैं।

इस प्रकार दूसरों का मत कहकर अब राजशेखर अपने मन से पाक का लक्षण करते हैं—जो केवल कार्य के द्वारा अनुमेय है। रचना के अनुसार पाकों का नाम होता है। उसके व्यवहार में सहृदयों की प्रसिद्धि ही कारण है। अर्थात् पाक सहृदय कवियों की प्रसिद्धि द्वारा निष्पन्न होता है।

काव्य का अभ्यास करने वाले कवियों के वाक्यपाक के नव भेद होते हैं। जिस पाक में आदि तथा अन्त स्वादुहीन होता है, परन्तु मध्य सुस्वादु होता है, उसे पिचुमन्द (नीमपाक) कहा जाता है। जो पहले अस्वादु युक्त तथा अन्त में मध्यम श्रेणी का स्वादुयुक्त होता है, उसे बदरपाक (बेरपाक) कहते हैं। आदि में स्वादरहित तथा अन्त में स्वादुयुक्त

वार्त्ताकि कम्, आद्यन्तयोर्मध्यमं तिन्तिडीकपाकम्, आदौ मध्यममन्ते स्वादु सहकारपाकम्, आदावुत्तममन्ते चास्वादु क्रमुकपाकम्, आदावुत्तममन्ते मध्यमं त्रपुसपाकम्, आद्यन्तयोः स्वादु नालिकेरपाकमिति। तेषां त्रिष्वपि त्रिकेषु पाकाः प्रथमे त्याज्याः। वरमकविर्न पुनः कुकविः स्यात्। कुकविता हि सोच्छ्वासं मरणम्।

प्रथमं मध्यमं=साधारणम्, अन्ते=परिणतौ अस्वादु=अमधुरम् वार्ताकस्य=वृन्ताकस्य इव पाको यस्मिन् तत् वार्ताकपाकम्। आद्यन्तयोः—आदौ परिणतौ च मध्यमं स्वादु तिन्तिडीकस्य=चुक्रस्य इव पाको यस्य तत् तिन्तिडीकपाकम्। आदौ=आरम्भे मध्यमम्, अन्ते=परिणतौ च स्वादु=मधुरं सहकारस्य=आम्रस्य पाक इव पाको यस्य तत् सहकारपाकम्। आदौ=आरम्भे उत्तमम् अन्ते=परिणतौ च अस्वादु=अमधुरं क्रमुकस्य=पूगस्य पाक इव पाको यस्य तत् क्रमुकपाकम्। आदौ=प्रथमम्, उत्तमं=मनोहरम्, अन्ते च मध्यमं त्रपुसस्य=कर्कट्याः पाक इव पाको यस्य तत् त्रपुसपाकम्। आद्यन्तयोः=आरम्भे परिणतौ च स्वादु=मधुरं नालिकेरस्य पाक इव पाको यस्य तत् नालिकेरपाकम्।

एषां=पूर्वोक्तानां नवानां त्रिषु=त्रिसंख्याकेषु त्रिकेषु गणेषु क्रमेषु पाका विभज्यन्ते। तत्र पिचुमन्द-बदर-मृद्वीकपाकानामेकः त्रिकः, वार्ताक-तिन्तिडीक-सहकारपाकानां द्वितीयः त्रिकः, क्रमु-त्रपुस-नालिकेरपाकानां तृतीयः क्रमः। एषा नवानां पाकानां मध्ये त्रिष्वपि त्रिकेषु प्रथमे=पूर्ववर्तिनः पिचुमन्द-वार्ताक-क्रमुकानां पाकाः त्याज्या=हेया अग्राह्याः। एषां पाकानां त्याज्यत्वादेतत्पाकविशिष्टानि काव्यान्यपि त्याज्यानि ज्ञेयानि।

तादृशकाव्यकर्तॄन् आक्रोशति—**वरमिति**। अकविः=अकवयिता, परं=श्रेष्ठम् पुनः=किन्तु कुकविः=कुत्सितः कविः न स्यात्=न भवेत्। कविताया अनिर्माणं वरं, परं कुकाव्यप्रणयनं न समीचीनमिति भावः। कुकविता=कुत्सित-

---

उसे मृद्वीका पाक अर्थात् द्राक्षापाक कहते हैं। जो आदि अन्त तथा मध्य सर्वत्र स्वादरहित हो उसे वार्ताकपाक (बैंगन या भटकटैया पाक) कहते हैं। आदि तथा मध्य अस्वादुयुक्त पाक को तिन्तिडीक पाक कहते हैं। जो आदि, मध्य तथा अन्त में स्वादयुक्त हो उसे सहकार पाक कहते हैं। जो आदि में उत्तम किन्तु अन्त में अस्वादु हो उसे क्रमुक पाक (सुपारी पाक) कहते हैं। जो आदि में उत्तम, तथा अन्त में मध्यम पाक हो उसे त्रपुसपाक (ककड़ी पाक) कहते हैं। जो आदि तथा अन्त में सुस्वादु होता है उसे नारियल पाक कहते हैं। इस प्रकार सभी पाकों के तीन-तीन के तीन वर्ग बनते हैं। अतः प्रथम वर्ग त्याज्य है, क्योंकि कविता न करना अच्छा है, किन्तु कुकवि कहलाना ठीक नहीं। कुकवि जीवित ही मृतक के समान

मध्यमाः संस्कार्याः। संस्कारो हि सर्वस्य गुणमुत्कर्षयति। द्वादशवर्णमपि सुवर्णं पावकपाकेन हेमीभवति। शेषा ग्राह्याः। स्वभावशुद्धं हि न संस्कारम पेक्षते। न मुक्तामणेः शाणस्तारतायै प्रभवति। अनवस्थितपाकं पुनः कपित्थपाकमामनन्ति। तत्र पलालधूननेन अन्नकणलाभवत् सुभाषितलाभः।

काव्यनिर्माणं हि = निश्चयप्रचम् सोच्छ्वासं = सजीवं मरणं = मरणतुल्यम्[1]।

पूर्वोक्तपाकानां मध्ये प्रत्येकत्रिकेषु मध्यमाः = वदरतिन्तिडीक-त्रपुसानां पाकाः=संस्कार्याः संस्कृत्य ग्राह्याः। संस्कारो विशुद्धिकरणम्, हि सर्वस्य = सकलस्य वस्तुनः गुणम्, उत्कर्षयति = वर्द्धयति। एतदेव दृष्टान्तद्वारा स्पष्टयति–द्वादशेति। द्वादशवर्णं = द्वादशरङ्गविशिष्टं सुवर्णं = स्वर्णम्, पावकपाकेन = अग्निसंस्कारेण हेमी भवति=विशुद्धं सुवर्णं जायते। शेषाः=प्रतित्रिकमवशिष्टा अन्तिमाः, मृद्वीका-सहकार-नालिकेरां पाकाः यथेच्छं ग्राह्याः = ग्रहणीयाः।

किं तेषु त्रिषु संस्कारं नापेक्ष्यते ? इत्याशङ्क्य समाधत्ते—स्वभावेति। स्वभावशुद्धं निसर्गविशुद्धं हि संस्कारं नापेक्षते। शाणः = मण्यादिषूत्कर्णताधायको यन्त्रविशेषः तारतायै = मुक्तामणिविशुद्धये न प्रभवति नहि नैसर्गिकीं मुक्तां स्वंसंस्करोति संस्कारद्वारा मुक्तायां न सौन्दर्यं समागच्छति अनवस्थितः = असुनिर्भेदः स्पष्टत्वेन प्रतिपत्तिरहितः पाको यस्मिम् तत् अनवस्थितपाकं काव्यं कपित्थपाकं आमनन्ति = कथयन्ति आचार्याः। यथाह–भामहः[2]—

है। मध्यम वर्ग के कवि संस्कारित करने योग्य हैं। अर्थात् उनका यथोचित संस्कार (शास्त्राभ्यास) आदि कराया जाय तो उनमें भी योग्य पाक उत्पन्न हो सकता है। संस्कार द्वारा सभी कार्यों में उत्कृष्टता बढ़ती है। अन्य धातुओं को भी यदि सुवर्ण के साथ तपाया जाय, तो उनमें भी सुवर्ण के समान गुण आ जाते हैं। त्याज्य पाकों के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रहण करना चाहिए। जो जन्मजात शुद्ध है, उसे पुनः संस्कारों द्वारा शुद्ध करने की अपेक्षा नहीं रहती है। मुक्तामणि को खराद द्वारा और अधिक विशुद्ध नहीं बनाया जा सकता। जिसकी कविता में पाक नहीं होता है, उसे कपित्थ (कैत) पाक की संज्ञा दी जाती है। जिस प्रकार पैरा (पयाल) को साफ करने से सम्भव है कि एक आध कण अन्न की प्राप्ति हो जाय, उसी प्रकार कपित्थ पाक वाले काव्य का अध्ययन करने पर

---

१. नाकवित्वमधर्माय मृतये दण्डनाय वा।
कुकवित्वं पुनः साक्षात् मृतमाहुर्मनीषिणः॥

२. अहृद्यमसुनिर्भेदं रसवत्वेऽप्यपेशलम्।
काव्यं कपित्थपाकं तत् केषाञ्चित्सदृशं यथा॥

सम्यगभ्यस्यतः काव्यं नवधा परिपच्यते ।
हानोपादानसूत्रेण विभजेत् तद्धि बुद्धिमान् ॥
अयमत्रैव शिष्याणां दर्शितस्त्रिविधो विधिः ।
किन्तु वैविध्यमप्येतत् त्रिजगत्यस्य वर्त्तते ॥

इति राजशेखरकविकृतौ काव्यमीमांसायां कविरहस्ये प्रथमेऽधिकरणे व्युत्पत्तिकविपाकानां निरूपकः पञ्चमोऽध्यायः ।

—:०:—

यथा पलालस्य धूननेन निष्पवनेन वा कदाचित् किञ्चित् अन्नकणमुपलभ्येत तथैव तत्रापि कदाचित् सुन्दरी सुक्तिः प्राप्येत ।

उक्तमुपसंहरन्नाह—**सम्यगिति** । सम्यक् = सुष्ठु, अभ्यस्यतः = अभ्यासं कुर्वतः कवेः काव्यं नवधा = नवप्रकारैः परिपच्यते = परिणमति । पाकमायाति । हानं च उपादानं च हानोपादाने तयोः सूत्रं हानोपादानसूत्रं तेन हानोपादनसूत्रेण = त्यागग्रहणपरिमाणेन बुद्धिमान्=मतिमान् पुरुष. तत् = काव्यम्, विभजेत् = विविच्य पृथक् कुर्यात् । अस्वादून् पाकान् परित्यजन् स्वादूंश्च आददीतेति भावः ।

अयमिति । अत्र = अस्यां काव्यमीमांसायाम्, शिष्याणां = शिक्ष्यमणानाम् कृते त्रिविधः = त्रिप्रकारकः, विधिः = विधानम्, दर्शितः = निर्दिष्टः, किन्तु = परन्तु, त्रिजगति = त्रिलोक्याम् अस्य = काव्यस्य, एतत् = विधानम्, विविधम् = अनेकप्रकारकं वर्तते = विद्यते ।

इति श्रीमुखशाण्डिल्यगोत्रजन्मना डा० श्रीकृष्णमणित्रिपाठिना
कृतायां काव्यमीमांसाव्याख्यायां विमलाख्यायां
व्युत्पत्तिकविपाकनिरूपकः पञ्चमोऽध्यायः ।

सम्भव है कि एक आध अच्छी काव्य सूक्ति का दर्शन हो जाय ।

सम्यक् प्रकार से काव्य का अभ्यास करने वालों कवियों के नव प्रकार के भेदों का वर्णन किया गया है । अतः बुद्धिमान् उसमें त्याज्य तथा ग्राह्य के भेद से उसका विभाजन कर लें ।

यहाँ काव्यमीमांसा ग्रन्थ में शिष्यों के भी तीन भेद बताये गये हैं । वैसे इस संसार में अनेक भेद सम्भव है ।

इस प्रकार कविराजशेखर कृत काव्यमीमांसा प्रथम अधिकरण
के पञ्चम अध्याय पर पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठी द्वारा
की गयी सुधानामक हिन्दी व्याख्या समाप्त ।

———

249

व्याख्यातुर्वंशपरिचयः

श्रुति-स्मृति-पुराणेषु सङ्गीतयशसो मुदा ।
देवश्लाध्यस्य दिव्यस्य सर्वप्राणिहितैषिणः ॥ १ ॥
भारतस्योत्तरे भागे देवरियाख्यमण्डले ।
धर्मागतछपरायां प्रसिद्धायां स्वमण्डले ॥ २ ॥
धनधान्यदिना पूर्णे सदाचारमनोरमे ।
कुवेरनाथसविधे त्रिपाठिब्राह्मणान्वये ॥ ३ ॥
रमेशमणिविदुषः प्रख्यातस्य सुकीर्तये ।
नागेश्वरमणि विद्वान् तनयोऽभूद् द्विजाग्रणीः ॥ ४ ॥
तदात्मजाश्च चत्वारो जाता विद्याविशारदाः ।
शीलसौजन्यसम्पन्ना विनीता बुद्धिशालिनः ॥ ५ ॥
बलदेवः सुदामा च भरोसापण्डितस्तथा ।
चतुर्थश्चास्ति श्रीकृष्णमणिशास्त्री प्रसन्नधीः ॥ ६ ॥
माता फूलमती देवी श्रीमती शुभलक्षणा ।
अजीजनत् सुतानेतान् मोदनिर्भरमानसा ॥ ७ ॥
चत्वारो भ्रातरो ह्येते लोककल्याणकारिणः ।
सर्वेऽपत्यकलत्रादिसुखिनः सौम्यमूर्तयः ॥ ८ ॥
वात्सल्यस्नेहभाक् तेषु कनीयान् ग्रन्थलेखकः ।
श्री श्रीकृष्णमणिर्वाग्मी काशीवासी सुधीवरः ॥ ९ ॥
एतस्याप्यद्भुताः सन्ति तनया भाग्यशालिनः ।
विजयश्च सुरेशश्च महेशश्च दिनेशकः ॥ १० ॥
एतेषु विजयस्यास्ति पुत्रो विनयनामकः ।
बालविद्यालयेऽधीते वयस्यै मोदमावहन् ॥ ११ ॥
कुवेरनाथकृपया विप्राणां च प्रसादतः ।
स्वधर्मकर्मनिरतो वंशोऽयं भ्राजते भुवि ॥ १२ ॥



कतिपय परीक्षोपयोगी प्रकाशन

१ रघुवंशमहाकाव्यम् प्र० सर्ग। 'चन्द्रकला' सं० हि० व्या०—शेषराजशर्मा २—२५
२ रघुवंशमहाकाव्यम्। 'विमला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्या। श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी
द्वितीय २·००, तृतीय २·००, ४-५ ४·००, ६-७ ४·००, १३-१४ ४—००
३ हितोपदेश : मित्रलाभ। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा ५—००
४ लघुसिद्धान्तकौमुदी। 'शिवाख्य' सं० हि० टीका—गोमतीप्रसादशास्त्री ७—००
५ तर्कसंग्रह—पदकृत्य। हिन्दीटीकासहित—श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी' २—५०
६ कुमारसम्भव। 'विमला' संस्कृत-हिन्दीटीका—पं० श्रीकृष्णमणित्रिपाठी
१—२ सर्ग ४—०० तृ० सर्ग २—०० च० सर्ग २—०० पञ्चमसर्ग २—५०
७ स्वप्नवासवदत्ता। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी' ६—००
८ नीतिशतकम्। 'विमला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्—कृष्णमणित्रिपाठी ३—००
९ अलङ्कार-सार-मञ्जरी। सान्वय संस्कृत-हिन्दी टीका। सम्पादक—
श्रीगोपालशास्त्री 'दर्शनकेशरी' २—००
१० काव्यमीमांसा। 'विमला' संस्कृत-हिन्दी टीका। १-५ अध्याय ३—५०
११ पञ्चतन्त्र। अपरीक्षितकारक। 'विमला' सं० हि० टीका। कृष्णमणित्रिपाठी ३—५०
१२ संस्कृत व्याकरणम्। (अनु० खंड-निबन्धखण्ड सहित)—पं० रामचन्द्रझा ८—००
१३ सांख्यकारिका। गौड़पादभाष्य। हिन्दीटीकासहित—पं० ज्वालाप्र० गौड़ ४—५०
१४ वेदान्तसार। 'भावबोधिनी' सं० हि० टीका—श्रीरामशरणत्रिपाठी ५—००
१५ मेघदूत। 'चन्द्रकला' सं० हि० टीका—श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी' १०—००
१६ रामाभ्युदययात्रा। सं० हि० टीकासहित—श्रीरुद्रप्रसाद अवस्थी ७—००
१७ दशरूपक। 'चन्द्रकला' हि० टीका सहित—डॉ० भोलाशंकर व्यास १६—००
१८ साहित्यदर्पण। 'शशिकला' हिन्दीटीका १-६ परि० २०-००, ७-१० परि १०—००
१९ काव्यप्रकाश। 'चन्द्रकला' हिन्दी टीका—डॉ० सत्यव्रत सिंह २०—००
२० भट्टिमहाकाव्य। सान्वय संस्कृत-हिन्दीव्याख्यासहित। श्रीगोपालशास्त्री
'दर्शनकेशरी' १—४ सर्ग ७—०० ५—६ ८—०० एवं १२—२२ शीघ्रप्राप्य
२१ नैषधमहाकाव्य। 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित। श्रीशेषराजशर्मा
प्रथम सर्ग ५—०० द्वितीय सर्ग ३—५० १—५ सर्ग, १—९ सर्ग शीघ्रप्राप्य
२२ किरातार्जुनीयम्। 'विजया' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या, परीक्षोपयोगि संस्करण।
डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी। द्वि० सर्ग १—५० ३—६ सर्ग ६—००
२३ दशकुमार-पूर्वपीठिका। परीक्षोपयोगि 'विमला' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित
व्याख्याकार—पं० श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी ४—००
२४ सवृत्तिरष्टाध्यायीसूत्रपाठः। सम्पा० श्रीगोपालशास्त्री 'दर्शनकेशरी' ३—००
२५ वर्षकृत्य। मैथिलीटीकासहित। श्रीरामचन्द्र झा १—२ भाग २५—००

